॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीहनुमतेनमः ॥

श्रीभक्तमाल

BHAKTA MÁLA,

सटीक, अर्थात्

स्वामी श्री १०८ नाभा जी कृत मूल छप्पै;

तथा

श्रीप्रियादासजी प्रणीत टीका कवित्त,

अनेक प्रतियों से बड़े परिश्रम से संशोधित

और

"भक्ति सुधाविन्दु स्वाद"

भाषा वार्तिक तिलक

जिसको

श्री५ रामरसरंगमणि जी की सहायता से

श्रीसीतारामशरण भगवान् प्रसाद

ने रचा; और

ज़िला गया जी के वकील, श्री सीतामढ़ी बुलाकीपुर निवासी

बाबू श्रीबलदेव नारायण सिंह जी

ने छपवाकर प्रकाशित किया ॥

(Part ~~II~~ I.)

कलि सं ५००६, सम्वत १९६२

1905, S. R. S. B. P.

॥ श्रीः ॥

श्रीहनुमतेनमः ।

श्रीभक्तमाल

सटीक, अर्थात्

स्वामी श्री १०८ नाभा जी कृत मूल छप्पै;

तथा

श्रीप्रियादासजी प्रणीत टीका कवित्त,

अनेक प्रतियों से बड़े परिश्रम से संशोधित

और

"भक्ति सुधाविन्दु स्वाद"

भाषा वार्तिक तिलक

सीतारामशरण भगवान् प्रसाद

विरचित

प्रथम भाग

(बहत्तरवें कवित्त पर्य्यन्त)

श्रीकाशीजी] श्रीविश्वनाथपुरी [बनारस

श्रीविष्णुसहाय बी० ए० केप्रबंध से

"चन्द्रप्रभा" यन्त्रालय मे मुद्रित ।

सन १९०४ सम्बत १९६०

॥ श्रीः ॥

श्री हनुमते नमः

१. यह "श्रीभक्तिसुधाबिन्दु स्वाद"

सम्बत् १९५९ (सन् १९०२) के श्रावण में आरंभ किया गया।

२. प्रथम भाग, अर्थात् "श्रीभक्तिरसबोधिनी" के बहत्तरवें कवित्त तक का यह तिलक, पूस १९६० (दिसेम्बर १९०३) में छपके प्रकाशित हुआ।

३. दूसरा भाग, नाम ७२ (बहत्तरवें) कवित्त के अनन्तर, भी छप रहा है।

४. रिप्लाई पोस्टकार्ड न भेजनेवाले महाशय उत्तर न भेजसकनेवाले के अपराध को, कृप करके क्षमा करेंगे।

उपाध्याय हरिहरशरण शर्म्मा

प्रमोदवन श्री अयोध्या जी।

१९०३.

॥ श्रीः ॥

श्रीहनुमते नमः।

श्रीवैष्णव नामावली

अर्थात्

अष्टोत्तरशत वैष्णवों के नामों की

मंगलमयीमाला।

सीतारामशरण भगवान् प्रसाद

विरचित ॥

"हरि को निज जस सों अधिक भक्तन जस पर प्यार"

श्रीकाशीजी

चन्द्रप्रभा प्रेस में मुद्रित

सम्वत् १९६० सन् १९०३ ई०

दूसरी आवृत्ति) S. R. S. B. P. (१००० प्रतियां।

श्री सीतारामाभ्यां नमः ॥

श्रीहनुमते नमः ।

——:0:——

श्रीवैष्णवनामावली का सूचीपत्र ।

श्री सीतारामाभ्यां नमः ॥

श्रीहनुमते नमः ।

——:o:——

श्रीवैष्णवनामावली का सूचीपत्र ।

श्री वैष्णवनामावली का सूचीपत्र ।

शुद्धि—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१९	कृषि	ऋषि
१९	७	टोक	कोट

॥ श्रीः ॥

श्रीहनुमते नमः ।

श्रीभक्तमाल

सटीक, प्रथम भाग ।

अर्थात्

" भक्तिसुधाविन्दु स्वाद " नाम
भाषा वार्त्तिक तिलक सहित
"श्री भक्तिरसबोधिनी" टीका
७२ (बहत्तर वें) कवित्त पर्य्यन्त ॥

—.o:—

" श्रीवैष्णवनामावली " समेत

To be continued

सम्वत् १९६० सन् १९०३ ई०

Registered under Act XXV of 1867.

॥ श्रीअयोध्यामिथिलाभ्यान्नमः ॥





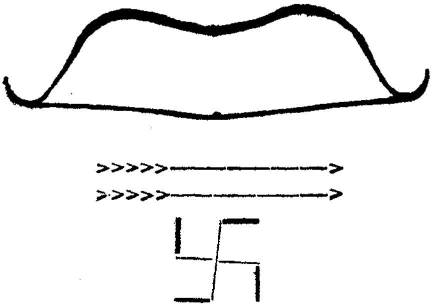
(श्लोक)

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानाञ्च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥

श्री मौद्गल्य ऋषीश्वराय नमः ।
॥ श्री मागडकरणी ऋषीश्वराय नमः ॥

परम प्रेमी मित्र श्री सीतामढ़ी बुलाकीपूर निवासी, गया जी के वकील बाबू श्री वैदेहीकृपा आश्रित बलदेव नारायण सिंह जी, तथा बगवरा (सारन) बासी चिरंजीवी बाबू श्री युगलकिशोर शरण जी की अनुमति से, इस पुस्तक के प्राय: तीस तीस फ़र्मा के कई भाग करके प्रकाशित किये जाते हैं; क्योंकि श्रीसीताराम कृपासे यह कई भागों में पूरा हो सकेगा ॥

श्री सीताराम



॥ श्रीहनुमते नमः ॥

भक्तमाल विषयोपक्रमणिका (सूचीपत्र)

इति प्रथम भाग ॥



श्री अयोध्या मिथिलाभ्यां नमः ।

श्री चारुशीलादेव्यैनमः ।
श्री चन्द्रकलादेव्यैनमः ।
श्री मन्त्रेश्वरीदेव्यैनमः ॥

—:o:—

वैष्णवे भगवद्भक्तौ प्रसादे हरिनाम्नि च ।
अल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैवजायते ॥

॥ श्रीसीताराम ॥

श्रीहनुमतेनमः ।

"मङ्गल मूल विप्र परितोषू"

रामहिं सुमिरिय सेइय रामहिं ।
गाइय सुनिय रामगुण ग्रामहिं ॥

(सदैव सत्संग)

परहित बस जिन के मन माहीं । तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

पूजनीय प्रिय परम जहां ते ।
मानिय सबहि राम के नाते ॥

"हरि के जे वल्लभ, ते दुर्लभ भुवन माँझ, इनहिं के पद रेणु आसा जिय करी है । योगी जपी तपी, तासों मेरो कछु काज नाहिं, प्रीति परतीति (प्रतीति) रीति मेरी मति हरी है ॥"

सीताराम

श्री हनुमते नमः ।

श्रीचारुशीलादेव्यै नमः श्रीचंद्रकलादेव्यैनमः

'देखिय रूप नाम आधीना ।
रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना" ॥

जेहिकर जेहिपर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू" ॥
"जाकी सुरति लगी है जहां ।
कहै कबीर सो पहुंचै तहां" ॥
"सीतापति सेवक सेवकाई ।
कामधेनु शत सरिस सुहाई" ॥

"सब सन्तन निर्णय कियो ।
श्रुति, पुराण, इतिहास ।
भजिबे को दोई सुघर, ।
कै हरि कै हरिदास" ॥

श्रीअयोध्या प्रमोदबन कुटिया

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद सौभाग्यकला (रूपकला)

जानिय तबहि जीव जग जागा ।
जब सब विषय विलास विरागा ॥
होय विवेक, मोहतम भागा ।
तब सियराम चरण अनुरागा ॥

श्रीसीताराम-
नामरसिकेभ्यो नमः ।

श्रीसीताराम

जपै; रटै; रमै ।

प्रतीति प्रीति



॥ श्रीगुरवेनमः ॥

श्रीसीताराम

नमो नमो ब्राह्मणेभ्यो- वैष्णवेभ्यो नमो नमः ।

"यह सोभा समाज सुख, कहत न बनै खगेश ।
बरनै शारद शेष श्रुति, सो रस जान महेश ॥"

जय श्रीसिय, सियप्राणप्रिय,
सुखमा शील निधान ।



भरत, लखन, रिपुदमन, जय,
जन रक्षक हनुमान ॥

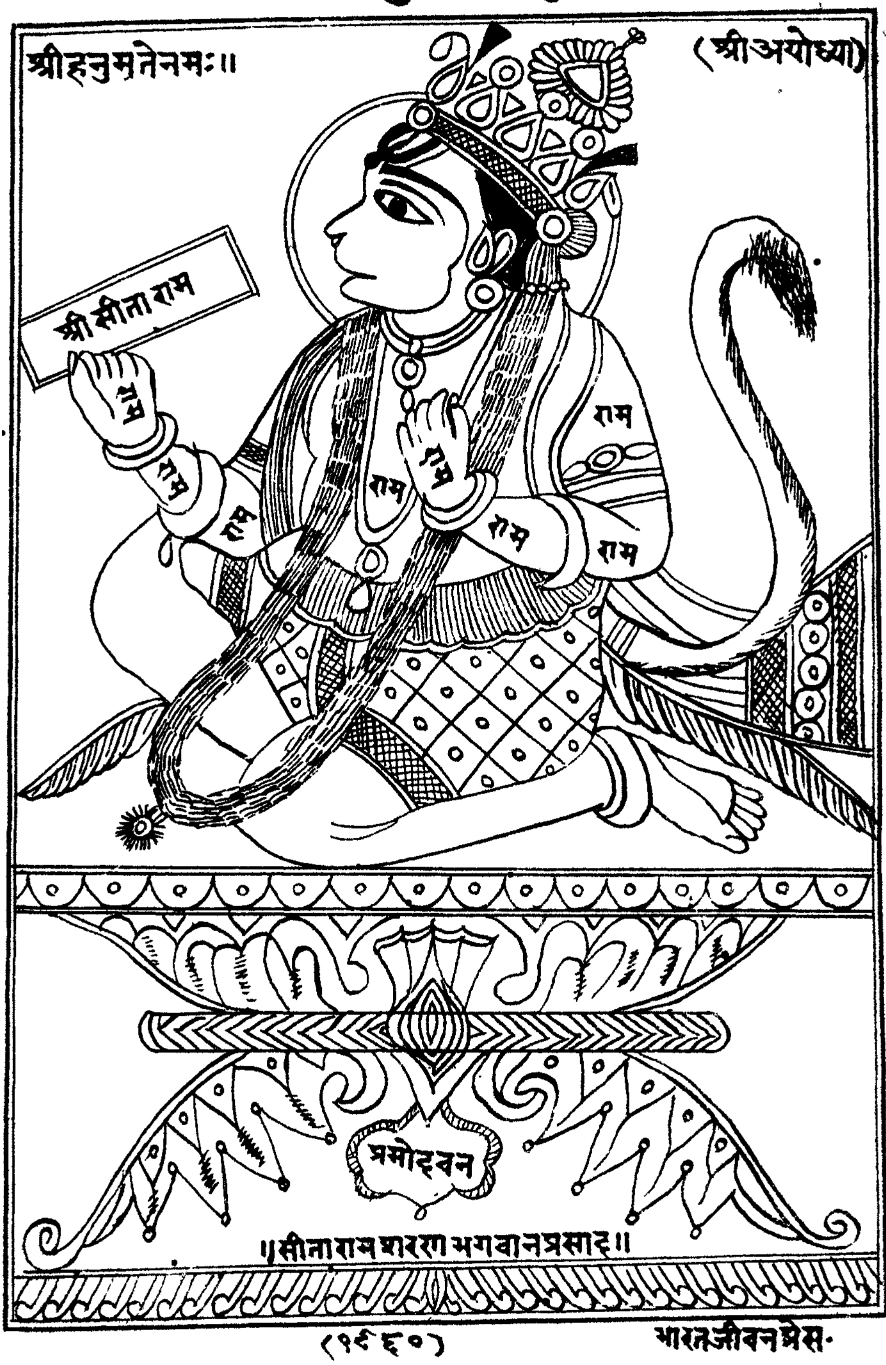
"यहि विधि कृपा रूप गुण धाम राम आसीन ।
धन्य ते नर यहि ध्यान जे रहत सदा लय लीन ॥"

श्री अयोध्या सरयू

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद ।

१९६०] (प्रमोदबन कुटिया) [१९०३

श्रीभक्ति सुधाबिन्दु स्वाद।



(१९६०) भारतजीवनप्रेस·

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्त्रेश्वरीदेव्यै नमः।

"श्रीहनुमत जन्म विलास" में नामानुरागी मुन्शी रामरूप्ये सहाय जी ने लिखा है कि

(चौ०) "एक दिवस, हरि हरिरस पागे। योगाभ्यास करन तहँ लागे॥ नैनमूंदिबैठेगुणसागर। तपनिधान कपिवंशदिवाकर॥ बह्यो प्रस्वेद शरमअतिकीन्हा। गुप्तभेव गिरिनायक चीन्हा॥ सो श्रमबिन्दु ईश गहि-लीन्ही। जगतारनकी इच्छा कीन्ही॥ शिवानाथ तेहि राख्यो गोई। यह प्रसङ्ग जाना नहिं कोई॥ हे मुनि-गण! हे तपबलरासा। यहां भविष्य सुनो इतिहासा॥ ह्वै है जब कलि कर परचारा। छीजै भक्तिभाव आचारा॥ तब गिरीश सो बिन्दु सुहाई। नभमग तजिहिं देवसुख-दाई॥ (दोहा) गहै भूमि बरबिन्दु सो, हरि जन काज विचार। उपजै तातै रूप शुभ, भक्ति योग आगार॥ नैन मूंदि बैठे कपी, यहितै होइ अनैन। "हनुमतवंशी" विमल मति, योग भक्ति तप ऐन॥ सो अयोनिजा, योगधन, जाको वर्ण न ज्ञात। स्वयं सिद्ध, पातक विगत, जग में हो विख्यात॥ "भक्तमाल" अद्भुत रचै, पूरै जन मन काम। "नाभा नाभा" सब कहैं, "नभोभूज" हो नाम॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमौद्गल्यऋषीश्वरायनमः

॥ श्रीमाण्डकरणी ऋषीश्वराय नमः ॥

नमो नमो ब्राह्मणेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ।

(दोहा)

श्रीसीता सीतारमण, गौरी गौरीकन्त ।
सानुकूल नित दोउपर, रहैं बिबुध हनुमन्त ॥१॥
मनिजर् *विष्णुसहाय, जो, बी० ए० शीलनिधान ।
शास्त्री श्रीमणिराम रत धर्म भक्ति विज्ञान ॥ २ ॥

(* श्रीकाशीचन्द्रप्रभाप्रेस म्यानेजर्)

॥ श्री मारुतिबीरकला की जय ॥

(दो०) श्रीसियपिय, श्रीभक्ति, गुरु, विप्र, भक्त पदधूरि।
बन्दौं मन बच प्रेम ते, मङ्गलमय मुदमूरि ॥ १ ॥

श्रीमारुतिबीरकला-कृपाश्रितों की जय।

शुद्धि पत्र (अशुद्धि संशोधन)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		श्रीवैष्णवनामावली का	
२	१९	कृषि	ऋषि
३	९	अब प्रभु	अब
४	२	* (छन्द मंजु)	(छन्द मंजु)
१५	११	अद्भुदानन्द	अद्भुत आनन्द
१९	७	टोक	कोट
३०	३	और	और हिन्दी में
३०	४	नेमि	ने
		श्रीभक्तमाल का	
७	१	चुकाहूं	चुका हूं,)
७	११	सोधो	सोंधो
९	५,१६	अङ्ग प्रक्षालन	अङ्ग पोंछना
१२	१३	धरी	धरि
१४	६	है	है ॥
१५	१२	ताहि	ताही
१७	१३	नारा	नीरा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	२३	संक्षप	संक्षेप
२०	२३	यन्त्रो	यन्त्रों
२४		आधृति	अधृति
२६		आवेग	आवेश
२७	१७	रामस्यक्लिष्ट	रामस्याक्लिष्ट
३०	४	येत्ते	यत्ते
३०	५	दधीमिह	दधीमहि
३०	६	धर्म	धीर्भ
३२	३	नहीं	नहिं
३२	१०	माहिं	माहीं
३२	१४	का	का,
४१	३	जाल	जाल'
४२	३	भीं	भी
४२	१४	अराधना	आराधना
३८	२	सात सव	पान्सौ (५००)
४४	१	हां	हों
४८	१२	श्र	श्री
४८	१४	दूसरा	दूसरी
५१	१३	बतालीस	बयालीस (४२)
५५	१७	नभभूज	नभोभूज
५६	६	नभमूज	नभोभूज
५७	२	श्रधा	श्रद्धा
६०	८	ध्यान्ह	मध्यान
६१	३	श्रीअयोध्या	बिठूर

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६१	८	बिठूर	मथुरा
६१	१०	श्रीअयोध्या	ब्रह्मावर्त्त
६३	८	जगधार	जगदुद्धार
६३	१७	भा	भी
६४	४	शंष	शंख
६९	७	बृजा	बिरजा
७८	१३,१६	अजामेल १२	धर्म स्वरूप १२
७९	११,१२	(१२) अजामिल	(१२)धर्मस्वरूप
७९	१८	नामाच्चारण	नामोच्चारणादि
८०	२	की	के
८२	७	प्रवाण	प्रवीण
८९	६	अन्तध्यान	अन्तर्धान
९०	६	जननि	जननी
९०	२२	प्रण	पण
९३	९	पात	बात
९४	१८	तारि	तोरि
९४	१९	हरि	हारे
९५	२०	कहि	कही
९५	१३	दिया	दिया ।
९६	७	विष वकसेन	विष्वकसेन
१०१	१२,१३	श्री प्रभु	निज
१०३	९	स्वय	स्वयं
१०५	१६	आश्चर्य्य मग्न में	आश्चर्य्य में मग्न
१०६	१०	संत	सुत

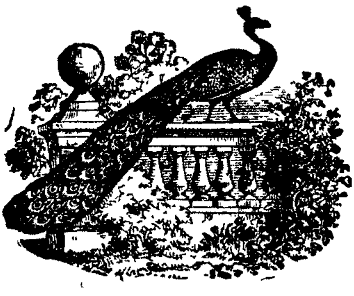
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	२४	सानुकल	सानुकूल
१०८	१९	सुन	सुनो
१११	१३	किया	कियो
१२०	३	हमारा	हमारी
१२२	६	सुगन्धित	सुगन्धि
१२२	९	धन्ध	धन्य
१२३	११	रज से	परस ते
१२५	३	मन	मुख
१२५	९	का	की
१२६	१६	रीसि	ऋषि
१२६	१७	खीसि	सीख
१३७	१५	किया	किये
१४०	२२	निराद रदेख	निरादर देख
१४१	३	मेरे	मोर
१४१	६	चीफ	चोप
१४३	११	जी भी	जी ने भी
१४४	१२	५१	५२
१४५		गान	कुछ गान
१४६	१	भाम	ग्राम,
१५७	२२	तिल	तिलक,
१५८	४	उस्के	उस्को
१५८	२१	करहि	करहिँ
१५९	१०	करि	करी
१५९	१५	क्योकी	क्योंकि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६०	६	का था	की थी
१६०	२३	सहचारियों	सहचरियाँ
१६२	१	देई	दई
१६२	३	उभरायो	उभरायो (उघरायो)
१६६	२३	वाञ्छित	वाञ्छा
१६७	१४	लीजियें	लीजिये
१६७	२०	आाऊ	ओऊ
१६८	२	को	श्री
१६८	१०	फल	फूल
१७२	५	परमीं	पर भी
१७३	१६	बहार	बाहर
१७५	१७	मन्त्र'	मन्त्र"
१८०	१३	ख्यात	नाम ख्यात
१८०	२०	ममेरे	फुफेरे
१८३	१६	वानी	बानी में
१९४			
१९६			

(प्रमाणिका छन्द)

नमामिभक्तमाल को ॥

" पढ़े जो आदिअन्तलों बढ़ें सोपर्मतंत लों, दहै अनन्त साल को नमामिभक्तमाल को ॥१॥ कथा करै जो याहिकी व्यथा रहै न ताहिकी, मिलै सो रामलाल को नमामि भक्त मालको ॥२॥ प्रकार नौ की भक्ति जो सो अंग होत शक्ति सो, कहै गिरा रसाल को नमामिभक्त-माल को ॥३॥ गढे सो अन्य भावहै लहै जो भक्ति दाव है, यही प्रमाण भाल को नमामि भक्तमाल को ॥४॥ अभक्त भक्ति को लहै सभक्ति मुक्त ह्वै रहै, गिनै सो तुच्छ कालको नमामिभक्तमालको ॥५॥ करै जो पाठ प्रात में सरै सुकाज गात में, हरै हि कर्म जाल को नमामि भक्तमाल को ॥६॥ मिलाय दुग्ध तक्रते जु होत सर्पि चक्रते, तथा सुबुद्धि बाल को नमामि भक्तमाल को ॥७॥ बहूपमा कहौं कहा कहे न पार को लहा, बखान सूर्य्य ख्याल को नमा-मिभक्तमाल को ॥८॥



॥ श्रीः ॥

" मंगल मूल विप्र परितोषू "

"मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ"

" मुदमंगल मय सन्त समाजू "

"सकल सुमंगलमूल जग, सिय पिय चरण सनेहु ॥ "

मंगलमयी माला,

अथवा, १०८ वैष्णवों की (अष्टोत्तरशत) नामावली ।

:o:

श्लोक ।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं ।

सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोहं रामवल्लभाम् ॥

रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ॥

मंगलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् ॥

॥ चौपाई ॥

श्री गुरु पद रज विमल बिभूती । मंजुल मंगल मोद प्रसूती ॥

भाव, कुभाव, अनख आलसहू । नाम जपत मंगल दिशि दसहू ॥

नाम प्रसाद शम्भु अविनाशी । साज अमंगल मंगलराशी ॥

मंगल मूरति मारुतनन्दन । सकल अमंगलमूल निकन्दन ॥

जगमंगल गुण ग्राम राम के । दानि मुक्ति धन धर्म धाम के ॥

सुजन समाज सकल गुणखानी ।

करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥

॥ दोहा ॥

सन्त सरलचित जगतहित, जानि सुभाव सनेहु ।

बालविनय सुनि, करि कृपा, सियपिय पद रति देहु ॥

सीतारामशरणं भगवान्प्रसाद सौभाग्यकला(रूपकला)

॥ श्रीमते हनुमते नमः ॥

१०८ वैष्णवों की नामावली

सुजन समाज सकल गुण खानी ।
करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥

(१)

श्रीसम्प्रदायभूषण भगवान् श्री १०८ रामानन्द स्वामीजीमहाराज के शिष्य जो श्री १६ सुरसुरानन्द जी, तिनके शिष्य श्री बलीयानन्द जी, उनके सेउरिया स्वामी, उनके श्रीबिहारीदास जी, उनके श्रीरामदास जी, उनके श्री बिनोदानन्द जी, उनके परम कृपापात्र श्री ६ धरनीदास जी जिनकी जगह "माँझी" जिला सारन श्री सरयूतट में है, उनके शिष्य श्री करुणानिधानजी, उनके श्री केवल रामजी, उनके शिष्य श्री ६ स्वामी रामप्रसादीदास जी, जिनका स्थान परसा जिला सारन एकमा रेलवे स्टेशन के समीप में है ॥

स्वामी श्रीरामप्रसादीदास महाराजजी के शिष्य श्री रामसेवक दासजी; जिनके परम कृपापात्र, करुणासिन्धु भक्ति ज्ञान वैराग्य योग निवास, अनन्तश्री स्वामी "रामचरणदास" मौद्गल्यऋषि महाराजजी इस *दीन प्रपन्न के गुरु भगवान् करुणानिधान हैं। सम्वत् १९१६ में श्रीसरयूतट यहदीन * शरणागतहुआथा ॥ [साकेत वास, सम्वत १९४३],

* सीताराम शरण भगवान् प्रसाद ॥

(२)

महानुभाव श्री "जीवाराम.युगल प्रिया" जी, प्रेमखानि [साकेतबासी] श्री गङ्गातट चिरांद्स्थान, ज़िला छपरा सारन । ये महोदय श्री जानकीबल्लभ जी के आगे गाने बजाने में अति निपुण थे इनकी "रसिक-प्रकाश भक्तमाल" तथा पदावली छपी ही है; श्री रामरहस्य महोत्सव आपने भली भांति विधिपूर्वक किया था, कि जो समाज और संघट श्री कृपाही से संभव था ॥ इनके स्थान के महन्त अब प्रभु अवध-बासी श्री श्याम सुन्दर शरण जीहैं ॥ सम्बत १९१६ में आप की कृपा इस बालक पर हुई ॥

(३)

उक्त महाराजजी के कृपापात्र महानुभाव श्री६ "युगला-नन्यशरणजी" तिन के चरणानुग पण्डितवर श्री६ स्वामी जानकीवर शरण महाराजजी, लक्ष्मणकोट श्री अयोध्या जी; नित्यही तीन चार बजे से आपकी सभामण्डप में सब प्रकार के लोग आके कृतार्थ होते थे । आप योगी, पण्डित, रसिक, दानी, प्रेमी, विज्ञ, कालीन, सरल, और बड़ेही प्रसिद्ध महात्मा थे॥ (*१९४०तथा१९५५)

---

* ☞ जिस २ सम्बत में जिस २ महानुभाव की विशेष कृपा इस दीन (सीतारामशरण भगवान् प्रसाद) पर हुई, उन महोदय के नाम के साथ उसी सम्बत का अङ्क उपस्थित है ॥

सम्वत १९५८ में आप श्री १०८ साकेत को सिधारे।

* (छन्द मंजु) "लछिमनकिले मिले" सबसों पुनि रहैं पवन सम प्यारे" हैं। सब सन प्रीति, रीति सन्तन की, सुरतरुसरिस उदारे हैं॥ सियरघुनन्दन रसिक सनेही करि, बहुजीव उधारे हैं॥ "श्रीजानकिवर शरण मणी-रसरङ्ग सबहि को प्यारे हैं॥ १॥ क्षमा क्षमा सम, शील सोमसम, सबसों प्रिय बतराहीं जू॥ ज्ञान बिचार भक्ति मण्डित सत "पण्डितजी" कहवाहीं जू॥ सीताराम रूप सुरतरु मति 'प्रीतिलता' लहराहीं जू। श्री जानकिवरशरण सन्त गुणपुंज गने नहिं जाहीं जू॥२॥ सम्वत शत उन्नीस अठावन माघ अमावस माहीं जू। पर्वमहोदय ब्रह्म मुहूरत अवध सरयुतट पाहीं जू॥ "श्रीजानकिवर शरण" गए श्रीजानकिवर पुर काहीं जू॥ जहाँ गए, रसरङ्गमणी, जिय पुनि आवहिं भव नाहीं जू॥ ३॥ (श्री राम रस रङ्गमणि)

(४)

अति अकिंचन परमहंस श्री ६ स्वामी "सीताशरण" महाराजजी, नामानुरागी, कनकभवन श्री अयोध्याजी; जिनके ठाकुर श्री "लालसाहिब"जी चोर के साथ जाने पर भी, आपकी वृद्धावस्था, अन्न, विरह ज्वर, और प्रेम से प्रसन्न होकर, आठ नव महीने पर पुनः आ मिले। बड़े योग्य दर्शनीय, विरक्त और पूज्य हैं। जो पूजा आती है सो श्री गुरु तिथि और भगवदुत्सव में शीघ्रही लग जाती है॥ (सम्वत १९५३ *)

एक दिन तीता कद्दू "श्रीकनक भवन विहारी जी" को धोखे से भोग लग गया, तो आपने बहुतसा घी तथा ओषधि भोग लगाई, बड़ा प्रेम किया वह भोग लगा तिक्त कद्दू आप पागए। कहां तक प्रशंसा कीजावे॥

५. श्री६ स्वामी "रामचरणदास" महाराजजी [साकेत-बासी], बड़ी कुटिया प्रमोदवन श्रीअयोध्याजी, इन महाराज जी के निर्दम्भत्व, जाप, और परिक्रमा के नेम, तथा साष्टाङ्ग दण्डवत पराकाष्ठा, अत्यन्त सरलता एवं साधुनिष्ठा, इत्यादि गुण विख्यात हैं। ये सर्वप्रिय महात्मा थे। आप के स्थान में भगवत कथा नेम से नित्यशः हुआ करती है। काशीनरेश हरिहरभक्त महाराज "श्रीईश्वरीप्रसाद" ने आप को ग्राम दिये परन्तु आपने स्वीकार नहीं किया॥ (सम्बत १९५०)

६. श्री६ स्वामी "रामचरणदास" महाराज ("श्री-हंस कला") जी, गुड़हट्टास्थान शहरभागलपूर; श्री सन्तचरणामृत के विशेष नैष्ठिक, और श्रीप्रभु शृङ्गार-रसके रसज्ञ हैं; नामानुष्ठान और झूलन का उत्सव, बड़े नेमप्रेम से किया करते हैं। (सम्बत* १९३८)

७. श्री६ "रामदास" जी उर्मिलाश्रित श्यामनायकी ("श्रीअनङ्गकुसुमा" जी, साकेतबासी) विष्णुपुर

* ☞ जिस २ सम्वत में जिनजिन महानुभाव की विशेष कृपा इस दीन (सीतारामशरण भगवान् प्रसाद) पर हुई, उन महोदय के नाम के साथ उसी सम्वत का अङ्क उपस्थित है॥

बेगूसराय, जिला मुंगेर, तैलंग और द्राविड़ भाषाओं के भी बड़े पण्डित श्रीउमाजी श्रीशारदाजी के कृपापात्र थे, भक्ति शास्त्र के अनेक ग्रन्थ आप ने भले प्रकार से देखे विचारे थे; श्री राग भोग में बड़ेही सावधान कुशल और अत्यन्त प्रेमी थे (१९२८*)

इन महात्मा के अनेक परिचय, अलग पुस्तकाकार छापे जायँगे हरिकृपासे ॥

८. महानुभाव श्री ६ "विद्यादास" महाराज के कृपापात्र पण्डित श्री ६ स्वामी "रामवल्लभा शरण" जी, मणि राम जी की छावनी के समीप, श्री अयोध्या जी; भगवत् कथामृत की वृष्टि नेम से आप नित्यशः करते हैं, जो अधिकारी इनकी मोहध्वंसिनी प्रेमवर्द्धिनी कथा सुनता है सो इनके हाथों बिक ही जाता है। बड़ी भारी सम्पत्ति सम्पन्न स्थान (नर्मदा तटस्थ) की महंती श्री अयोध्या बास के अर्थ अत्युत्तम रीति से छोड़ दी॥ पूजा जो चढ़ती है सो सब सन्त भगवन्त के भोग लगता है। अति मिष्टभाषी हैं॥ नायक स्याम सुन्दर शरण शर्म्मा नाम के एक बड़े वैराग्यविमुख अवैष्णव पण्डित को अति प्रेमी श्रीवैष्णव बनाया। इनके अनेक चेले लोग प्रशंसनीय हैं॥ (१९५५*)

९. श्रीमद्राघवेन्द्रसखा "श्रीकामदेन्द्रमणि" जी, श्री अयोध्या जी "साकेत राजमहल," (श्री कनकभवन के

उत्तर;) ये भाविक महाराज बड़े विज्ञ, कृपालु और पारसी भाषा के भी ज्ञाता थे। (सम्बत १९५४ *)

१०. उक्त महानुभाव के चरणानुग श्री १६ स्वामी "श्री-सीतरामशरण रामरसरंग मणि" जी महाराज भक्तमाली, श्री अयोध्या जी; सख्यरस के छके, बड़े विरक्त, कविवर मित भाषी, श्री बालमीकीयरामायण तथा श्रीमद्गो-स्वामी तुलसीदास कृत ग्रंथों के अत्यन्त श्रद्धावन्त नेमी प्रेमी हैं; "श्रीरामानन्द यशावली श्रीहनुमत् यशतरंगिनी" श्री "सरयू रसरंगलहरी," "श्रीरामस्तवराजतिलक," "श्रीराम लीला संवाद,"इत्यादि इत्यादि, अनेक पोथियां इन महाराज की प्रणीत छप चुकी हैं। भक्तमाल की कथा तो अत्युत्तम रीति से कहते हैं। श्रीगुरु स्मरण तथा श्री सीतारामचन्द्र जी के भजन के अतिरिक्त दूसरा कोई उद्यम वा कर्म आप को है ही नहीं। (सम्बत* १९५५ तथा १९६०)

११ श्री ६ स्वामी "श्री मन्नारायणाचारी स्वामी" जी, सूजागंज शहर भागलपूर; रहस्यज्ञ; वैष्णव शास्त्र के बड़े भारी पण्डित, (साकेतबासी), बाल ब्रह्मचारी, कालीन, परमविरक्त, श्रद्धाविश्वास भक्ति के स्वरूप, श्रीरंगव्यंकटेश्वर जी के कृपापात्र। (सम्बत* १९४१)

१२महात्मा श्री ६ "हरिहर प्रसाद" सीतारामीय जू के कृपापांत्र पुजारी श्री६ स्वामी "टीकम दास" जी, कमक्षा

स्थान श्री काशी जी; भक्ति ज्ञान और योगसम्पन्न, संस्कृत तथा बंगला भाषा के पण्डित, सख्य रस के रसिक, कृपालु और अतिउत्तम सदाचारी हैं। दर्भंगा सलोना के अनेक लोगों को चेताया प्रभु के सम्मुख किया है॥ बगौरा के डिपुटी बाबू द्वारका प्रसाद आपही की कृपा से श्री अवध वासी हुए हैं॥ (सम्बत * १९२१)

१३. श्री ६ स्वामी "नारायणदास" महाराजजी, आजानुबाहु विशालाक्ष महान्त, रत्नसागर श्री जनकपूर; अति उत्तम संस्कारी और विख्यात हैं। आप की प्रशंसा किस्से हो सके॥ श्री विबाह समय्या बड़े धूमसे करते हैं। "श्रीसीतामढ़ी" "पुपरीजनकपुररोड" स्टेशन् इत्यादि में भी इनकी ठाकुर बारियां हैं। बहुत २ लोगों को महात्मा जी ने कृतार्थ किया है और करते हैं॥ (१९४६ *)

१४ परमारथी श्री ६ स्वामी "रामदास" जी [साकेतवासी], श्री गंगातट "बदनपूर" जिला इलाहाबाद; दोनों और अनाथों पर, (तथा इस देह के पितामह श्री "केवल कृष्णजी" पर और "प्रेमगंग तरंग" के कर्त्ता पिता श्री "तपस्वीराम" जी सीतारामीय पर, कि जो उस स्थान में बारंबार जाया करते थे, तथा इस दीन बालक* सीताराम शरण पर, सम्वत् १९०६ में आप की बड़ी ही कृपा रहाकरती थी; अनगनित लोगों ने आप से

भागवत वेष पाया, उस कठिन प्रदेश को आप ने भलीभांति चेताया; आप के कई स्थानों में से श्री अयोध्या जी में भी एक जगह "श्री जानकी घाट" के समीप "जानकी कुंज" वर्त्तमान है (* १९०६)।

१५. श्री ६ स्वामी "कान्हर दास" जू [गोलोक बासी,] गंगातट रेपूरा परगना कसमर ज़िला छपरा सारन; अन्नदान में अत्यन्त प्रख्यात; साधु सेवा इनकी प्रमुख्य निष्ठा थी। इनके कई बड़े २ परिचय भी सुने गये हैं। (सम्बत १९१७ *)

१६. श्री ६ स्वामी "भीष्म दास" जी, बाकरगंज बांकीपूर शहर पटना; पानसौ छः सौ मूर्त्ति सन्त चतुर्मासा में इन सरलसुभाव महाराज के स्थान में रहते, झूलन देखते, और पण्डित श्री सर्वानन्द जी की कथा सुनते थे; इनकी साधु सेवा सब को विदित थी श्रीअयोध्या जी में आके आपने १९५७ में साकेत बास पाया (* १९४५)॥

१७. श्री ६ स्वामी हरिहर प्रसाद जी के दूसरे शिष्य श्री ६ "प्रमोदवनविहारी शरण" जी महाराज, ऋण-मोचन, श्री अयोध्या जी; आपने भी दरभंगा इत्यादि के लोगों को अच्छे प्रकार से चेताया है। श्रीचित्र-कूट, और पूर्व में बहुत दिनों तक श्री गंगातट एकान्त-स्थान के मध्य एक काठ के गुफा में रहकर आप

भजन करते थे। सूखे आम्र के वृक्ष को, बगौरा में, अनुष्ठान से हरा किया (*१९५५) ॥

१८. श्री६ "रामसरन दास" नवलअलीजी, अब्दुल्ला-हचक, जुगेसर जिला पटना। "महाशम्भुक्षेत्र माहात्म्य" नाम एक शृङ्गार रस की इनकी पोथी (जो छपी नहीं) बड़ी उत्तम है ॥ (सम्वत *१९४६)

१९. श्री५ "रघुनाथदास" महाराजजी [साकेत वासी], बड़ीछावनी श्री अयोध्या जी, जिनका प्रताप और यश देश देश पर्य्यन्त विदित ही है कि सहस्रशः मूर्त्ति प्रति दिन प्रसाद पाते थे। (सम्वत *१९२८) इनकी रचित नाम "सुमिरनी" (पदावली) प्रसिद्ध है ॥

दोहा। जय उदार रघुनाथ सम, जन रघुनाथ उदार।
जासु सुजस जग जगमगत संतन मुख उजियार ॥

इनकी सम्मति से इनके एक नाम राशी ने "विश्राम सागर" छपवाया था ॥

२०. श्री६ "रामोदार शरण"जी, (साकेतवासी) लक्ष्मण कोट (लछिमन किले के) महन्त, श्री अजोध्या जी। ये महात्मा यथा नाम तथा कीर्त्ति उदार वर, बड़े दानी; सन्तों और विद्यार्थियों के साथ बड़ा भाव रखते थे; बड़े ही धूमधाम से, एवं वित्तशाठ्य रहित विभवपूर्वक, सब उत्सव और समैया भलीभांति करते थे; बड़े गुरुनैष्ठिक और पूर्वोक्त श्री १६ स्वामी

जानकीवरशरण महाराजजीके गुरु बन्धु और बड़े कृपा-पात्र थे [१९५० *]

२१. उक्त श्री ६ जानकी वरशरण महाराज जी के कृपा-पात्र श्री १६ "गोमती दास" "श्री मतीशरण" ("माधुर्य्य लता") जी महाराज, "श्री हनुमन्निवास" श्री अयोध्या जी। पूर्व में आपने मणिपर्वत जी पर कुछ काल पर्य्यन्त एकान्त बास करके भजन किया है; श्री हनुमत्प्रसाद से समैया उत्सव बड़े प्रेम से करते हैं; पूज्य हैं॥ इनके कृपापात्र मुनशी " अम्बे सहाय " जी बड़े श्रद्धावंत और कवि हैं॥ (* सम्वत १९५४; १९६०)

२२. महानुभाव श्री ६ राम सखे जी के गद्दी स्थान के महन्त श्री ५ "अवधशरण" जी महाराज (साकेत-वासी,) वासुदेव घाट श्री अयोध्या जी। श्री बाल्मीकि कथा अति उत्तम कहते थे॥ (सम्वत १९२९)

२३. श्री६ "तुलसीदास" जी (साकेतवासी,) नयाघाट, श्री अयोध्या जी, कई (धनाढ्य) महाजनों को आपने चेताया था॥ उनकी आरती और सदावरत प्रख्यात था। (सम्वत* १९५३)

२४. पुजारी श्री१६ "श्यामसुन्दरी शरण" (चन्द्र-प्रभा) जी, श्री अयोध्या श्री कनकभवन बिहारी जी के विशेष स्नेहपात्र, शृङ्गार रस के छके, अनन्य, विरक्त; जाग्रंत स्वप्नें में दिनरात अर्चा पूजा भोग राग और

सतसंग के अतिरिक्त दूसरा कोई व्यवहार जिनको स्पर्श ही नहीं करता है (* १९५२)।

स्वप्न में कई बार श्रीकनकभवनविहारिणी विहारी जी के दरशन पाए हैं।

२५. श्री६ "राघव शरण" जी महाराज, (साकेतवासी) श्री लक्ष्मण मन्दिर बढ़ैया ज़िला मुंगेर; नामानुरागी, श्री गंगाजल के दृढ़ नेमी और शृङ्गाररस के ज्ञाता थे। (१९४४*)

२६. पण्डितवर श्री ५ "गंगादास जी" परमहंस, अति सरल, बड़ी कुटिया प्रमोदवन श्री अयोध्या जी; नित्य नेमपूर्वक "श्री प्रमोदवन रासबिहारिणी विहारी जी" की कथा सुनाया करते हैं, जो पूजा चढ़ती है सो भगवान् को भोग लगा देते हैं; इसके अतिरिक्त इनका सम्पूर्ण काल विद्यार्थियों और साधुओं को वेदान्त तथा पुराणादिक पढ़ाने में कटता है। (सम्बत * १९३९)

२७. श्री ५ "रघुनाथ दास" जी महाराज गुफा पर, शहर बिहार ज़िला पटना; नित्य, और विशेषतः राजगृह के मेले के समय डेढ़ महीना, आप तन मन धन से साधु सेवा करते हैं। इनके आचरण प्रशंसनीय हैं (*१९४९)

२८. पण्डित श्री ५ "माधवदास" मानसव्यास जू, विरक्त, शृङ्गार कुंज श्री अयोध्याजी; सरल स्वभाव; आप नित्य नेम से श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास कृत ग्रन्थों का पाठ दिया करते हैं। (*१९५५) श्री "रामदास" नाम रामायणी इनके शिष्यों मे प्रधान हैं॥

२९. परमहंस श्री६ रामसियाशरणजी, (साकेत वासी) सन्तनिवास श्रीअयोध्या जी इनके कृपा पात्रों में काशी के बेणीप्रसाद, छोटेलाल इत्यादि थे, और बाबू जगन्नाथ प्रसाद प्रशंसनीय हैं॥ (*१९५५)।

३०. श्री ५ "स्यामसुन्दर शरण" जी, महाराज शृङ्गार कुंज प्रमोदवन श्रीअयोध्याजी; बड़े प्रेमी हैं, और आप के स्थान में प्रायः उत्सव और लीला आदि होती है और श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी कृत "श्रीरामचरित मानस" नेम से कथन होता है, जिसके सुनने को बहुत महात्मा एकत्र होते हैं आप का शील स्वभाव प्रशंसनीय है। अब ये महात्मा चिरांद स्थान के महान्त भी हैं (सम्वत् १९५५*)

३१. श्री ५ "कनकभवन बिहारी शरण" जी (साकेतवासी,) रसिक निवास श्री अयोध्या जी। बड़े ही विज्ञ थे बाबू "दुर्गाप्रसाद" वकील हकमा जानकी नगर (छपरा) पर इनकी अतिशय कृपा हुई॥ (*१९५३)

३२. महाराज श्री ६ "सीतलदास" जी, अस्सीसंगम श्रीकाशीजी; साधुसेवी (*१९५३)

३३. पण्डित श्री ६ "रामनारायणदास" जी, वैष्णव रीवां मन्दिर तथा बड़ी जगह रामकोट श्रीअयोध्याजी; दयालु; विद्यादानप्रवाह; अनेक विद्यार्थियों को आप से नित्य पाठ लाभ होता है; श्रीचरणचिन्ह और श्री

अयोध्या जी का चित्र, बड़े परिश्रम से बनाया है; अती-वोत्साही हैं। भगवान के कार्य्यों में अत्यन्त उद्यत; कई पोथियां छपवाई हैं; श्री अगस्त्यसंहिता भी छप-वायी है (*१९४४)।

३४. श्री ६ जानकीदास जी, (साकेतवासी) चौकाघाट बरुणातट श्रीकाशी बनारस। सन्त सीथ प्रसादो के विशेष नैष्ठिक; श्रीरामचरित मानस के रसिक थे (१९५३*)

३५. स्वामी श्री १६ रामचरणदास महाराज जी भाग-लपुरवासी के गुरु भाई श्री ५ "रामरत्नदास" महाराज जी शृंगारी ने मदेहपूरा जिला भागलपूर और स्थान कजरा ज़िलामुंगेर को चेताया है ॥ (१९४२ *) ।

३६. श्री ६ "नारायणदास" जी महाराज [साकेतवासी,] चौहट्टा वड्लपूरा स्थान शहर बांकीपूर ज़िला पटना आम्ब (रसाल फल) की विशेष नेम तथा विलक्षण प्रेम से निवेदन किया करते थे (सम्बत *१९४६) ।

३७ पण्डित श्री ६ भगवानूदास जी, (साकेतवासी) श्री ६ महाराज रघुनाथदास जी साकेतवासी के कृपा-पात्र, बड़ीछावनी श्रीअयोध्याजी (१९५१*) । स्वामी श्री हरिहर प्रसाद जी के बड़े कृपापात्र थे।

३८. पण्डित श्री५ "रामरत्नदास" जी बड़ी जगह श्री अयोध्या जी, उपासना ग्रंथों इत्यादि के बड़े विज्ञ हैं ॥ (१९५३ *) ।

३९. पण्डित श्री ५ "विश्वेश्वर दास" जी तुलसीबाड़ी श्री अयोध्याजी, वेदान्त के बड़े ज्ञाता श्री यन्त्रराज के नेमी (*१९५४) ।

४०. महान्त श्री ५ "रामकुमारदास" जी बड़ी कुटिया प्रमोद वन श्री अयोध्या जी; जितेन्द्री; नेम से नित्यश: प्रतिदिन पान्सौ दण्डवत करते हैं; मुठ्ठी मांग २ कर साधुसेवा करते हैं; स्वभाव के बड़े सरल हैं ॥ (१९५१)

४१. पुजारी श्री ५ "जगद्देवदास" जी, (प्रियसखी) श्री अयोध्या जी; श्री किशोरी जी के विशेष कृपा पात्र हैं; श्री कनकभवन विहारी जी की पूजा का अद्-भुदानन्द आपने पाया है; (*१९२९)

४२. श्रीरामनामानुरागी श्री ५ "सियराम गोपाल-दास" जी तपस्वी, श्री मणिराम, जी की छावनी श्री अयोध्याजी । पण्डित श्री १६ रामवल्लभाशरण जी के कृपापात्र ॥ (१९५५)

४३. श्री "गंगादास" जी, विरक्त, मधुकर, प्रशान्त; श्रीअयोध्याजी श्रीजानकीकुंजश्री जानकी घाट (*१९५४)

४४. श्री हजूरी जी के स्थान के महान्त श्री "महा-बीर दास जी" जिन की सम्मति से श्री अयोध्या जी के श्रीजानकीरामघाट पर भी (ज्येष्ठपूनो को, वार्षिक) श्री सरयू जन्मोत्सव समाज होने लगा है (*१९५४) ।

४५. श्री ६ "भगवान्दास" जी ग्रामवीर दरियाबाद

ज़िला बारहबंकी; दंडवत के अत्यन्त नेमी हैं; श्री सरयू घाघरा संगम पर, पूस मकर महीना भर प्रति सम्वत्सर, साधु सेवा बड़ी श्रद्धा से करते हैं; श्रीप्रमोदवनबिहारी जी के बड़े कृपा पात्र, संगीत निपुण, कालीन (सम्वत् * १९५२)

४६. श्री ६ "ज्ञाना अली" जी (साकेत वासी) वासुदेव घाट श्री अयोध्या जी; संगीत भजन तथा प्रेम में प्रसिद्ध और श्री जानकीजीवन जी के विरही थे; इनकी पदावली लखनऊ (श्रीलक्ष्मणपुर) में छपी है (* १९३४)

४७. पुजारी श्री६ "अवधविहारीशरण" जी साकेतवासी के कृपापात्र श्री ६ रामध्यानदास जी (साकेतवासी) शहर छपरा, ज़िला सारन; आप ने "श्रीरूपसखी जी की होली" की रहस्य लीला बड़े धूमधाम और अत्यन्त प्रेम नेम से कराई थी जिस के परमानन्द की प्रशंसा साधारणतः असम्भव है, देखने वालों ही को अनुभूत है [*१९४१] आप मुनशी श्री तपस्वी राम जी के [जो इस शरीरके पिता थे] अत्यन्त प्रेमी थे ॥

४८. विरक्तवर परमहंस श्री ५ "सरयूदास" जी श्री अयोध्या श्रीजन्मस्थान के कुंज में [१९३५*]

४९ पण्डित श्री "अवध बिहारी शरण" जी खाकी (गोलोकवासी).रौज़ा ज़िला सारन छपरा, श्रीराधा-

रमण जी के आगे नाचने और श्री गंगा जी के दर्शन तथा श्री भागवत के पाठ का नित्यनियम अति ही दृढ़ रखते थे। श्री भागीरथी जी के तीर तीर श्री सरयू महारानी जी के संगम से सोनभद्र के संगम तक के अनेक लोगों को आप ने भली भांति चेताया (१९४६)

५० श्री ५ "वैष्णवदास" जी महाराज (साकेत वासी) श्री मणिराम जी की छावनी श्री अयोध्या जी, संतों के हेतु द्वार दिन रात खुला ही रहा करता था (केवाड़लगाए नहीं जाते थे) कि न जानें साधु किस क्षण आ पहुँचें; सरलता, दयालुता, इत्यादिक गुण संपन्न थे (१९५४)

५१ श्री ५ "सरयूशरण" जी साकेतवासी गौतमक्षेत्र श्रीसरयूतट, जिला छपरासारन [१९५०]

श्री "दामोदरदास" जी महात्मा इसी क्षेत्र में बिराजते हैं; बड़े प्रेम से ताम्रपत्र पर श्री यन्त्रराज श्री अयोध्या जी से लेगए हैं॥

आप ही के प्रेमपात्र बाबू श्रीसूर्य्य प्रसाद जी वकील छपरा, कि जिन पर श्रीमारुति जी की अनूठी कृपा हुई, सन्तों और रामभक्तों के अत्यन्त श्रद्धावान् हैं॥

५२ श्री ५ "रघुवीर शरण दास" जी महाराज, चौहट्टा मन्दिर, बांकीपूर शहर पटना तथा बदलपूरा खगोल, शहर दानापूर; ये महात्मा अंक ३६ (पृष्ठ १४) के श्री ६ नारायणदास जी महाराज के कृपापात्र, बड़ेही प्रेमी तथा विवेकी; श्री अयोध्या श्री प्रमोदवन बिहारी जी के बड़े कृपापात्र (१९४९)

☞ बदनपुरीय महात्मा श्री ६ रामदास महाराज जी के, तथा श्री ६ युगलप्रिया जी कृपानिधि के, कुछ और भी चरित्र तथा परिचय, कविवर श्रीमहावीर प्रसाद् नारायण सिंह शर्म्मा जी ने (सम्वत् १९४५; १९४७ के मध्य) अपनी पोथी " भागवत् चरित्र चन्द्रिका" में लिखे हैं ॥

---

५३ श्री ५ "गोविन्ददास" जी व्रजवासी कथा श्रवण के बड़ेही रसिक, मधुकर, विरक्त, कभी श्री रामकोट में, कभी श्री मणिपर्वत के पास श्री अयोध्याजी (१९५३)

५४ श्री ६ "भरतदास" जी, रामनामानुरागी, मधुकर, विरक्त, कथा के नेमी, केवल एक लंगोटी और माला मात्र रखते हैं, प्रमोदवन श्री अयोध्याजी (१९५४)।

५५ पण्डितवर श्री ६ "जगन्नाथदास" जी, श्री अयोध्याजी, श्री गढ़ी में श्रीहनुमान जी को नित्य कथा सुनाया करते हैं, बड़े गुरुनिष्ठ और प्रेमी (१९५६)

५६ श्री "ठाकुरदास" जी महाराज, बांका जिला भागलपूर (१९४३)।

५७ श्री "राघवदास" जी, श्री कनक भवन के द्वार पर श्री अयोध्याजी श्री युगल सर्कार के पुष्प-शृङ्गार एवं प्रेम कैंकर्य्य में बड़े ही कुशल, (१९५४)

५८ श्रीपण्डित "माधवदास" जी, बड़ी जगह, श्री अयोध्या जी, विद्यादान के हेतु अतिशय कष्ट उठाते हैं, वैष्णववर श्री रामनारायणदास जी के गुरुभाई (१९५५)

५९ श्री "रामटहलदास" जी, महाप्रसाद के मधुकर, श्री रामकोट श्री अयोध्या जी (१९५४)

६० श्री अयोध्या जी श्रीहनुमन्निवास में श्री राज-किशोर शरण जी, पुजारी (१९५९)

६१ श्री "गोपालदास" जी (साकेत वासी) पुजारी, बड़ी कुटिया प्रमोदवन श्री अयोध्या जी, व्यापार में भी बड़े सत्याचरणवाले, तथा शृङ्गार में बड़े निपुण थे (१९२९)।

६२ श्री "अवधनन्दन" शरण जी, पुजारी रङ्गमहल रामटोक श्री अयोध्या जी; सन्तों में आपकी भारी निष्ठा थी (साकेतवासी १९६०)

६३ श्री "रामजी शरण" श्री हनुमन्निवास श्री अयोध्या, अति सरल और गुरु भक्त, नामानुष्ठान में बड़ा कष्ट करते हैं (१९६०)।

६४ श्री "राधिकादास" जी, (साकेतवासी) प्रमोदवन श्रीअयोध्याजी, इनके अधिकारके समय में बाढ़जनगोविन्द स्थान जिला पटना साधुसेवा में प्रख्यात था (१९५१)।

६५ श्री "रामप्रकाश दास" जी, श्री अयोध्या जी प्रमोदवन कुटिया, के पुजारी, आप के श्रीनामानुराग एवं तीव्रतर वैराग्य की प्रशंसा किस से हो सकती है (१९५२)

६६ श्री रामरघुबीरशरण महाराज श्री लखन कोट श्री अयोध्या जी (१९५५)

६७ श्री ६ "खाकी जी महाराज" (साकेतवासी) खैरा परमना बाल जिला छपरा सारन, समदमादि सद्-गुणों के पूरे थे, और बड़े ही अकिंचन (१९४५)।

आप ही के प्रेमपात्र श्री पण्डित रामहितोपाध्यायजी हैं कि जिनका, श्री वाल्मीकीय द्वारा अद्‌भुत उपदेश प्रति वर्ष सैकड़ों विमुखों को श्रीभक्ति महारानी जी के सन्मुख करके कृतार्थ कर देता है ॥

६८ श्री ५ "प्रेमदासजी," ऋणमोचन श्री अयोध्या जी पहिले पोस्टमास्टर थे अति प्रशंसनीय (१९२९)

६९ श्री ५ "रामदास काले बाबा" जी, श्री गंगातट बाढ़ जिला पटना, स्वयंही झोरी फेर के साधु सेवा बड़ी निष्ठा से करते थे ॥ (१९४४) "कुसंग से किसने दुख न पाया ?"

७० श्री ६ "रामगुलामशरण" जी, बड़े कृपापात्र, दरशनीय कभी श्री हनुमन्निवास कभी श्री प्रमोदवन कुटिया श्री अयोध्या जी (१९५१)

७१ श्री ५ गोवर्द्धनदास जी, उलाव ज़िला मुंगेर; मुंगेर के श्रीगंगातट कष्टहरणी घाट पर भी कुछ काल पर्य्यंत, ये भजन करते थे ॥ (१९४१)

७२ श्री ६ रामदास जी, साकेतवासी राजगृह ज़िला पटना लौंदके (अधिकमासके) मेले में तीन २ वर्ष पर इनके यहां वैष्णवों की भारी भीड़ भाड़ होती है, दर्शन योग्य (१९४६)

७३ श्री रामचरण दास जी (साकेतवासी) चम्पा-नाला, भागलपूर (१९३८)।

७४ श्री "तपसी जी" साकेतवासी श्री कमलातट,

शहर दर्भंगा तिर्हूत (१९४०) ।

७५ श्रीरामदास जी साकेतवासी शहर आरा, भोजपूर जिला शाहाबाद (१९२२) ।

७६ श्रीजानकी दास जी, साकेतवासी बकसर क्षेत्र श्रीगंगातट, जिला शाहाबाद, प्रेमी, नृत्यप्रवीण, संगीतनिपुण, (१९३९)

७७ श्री रामनारायण दासजी (जड़ाववाले) श्री रामचरित मानस के चमत्कृत प्रेमी, रामायण निवास "बड़ी कुटिया," प्रमोदवन श्रीअयोध्याजी अतिमिष्टभाषी (१९५३)

७८ श्रीलक्ष्मीनारायणदास जी, साकेतवासी शहर कलकत्ता (१९१९).

७९ श्री हरिदासजी प्रियवर, श्रीतपस्वी जी की छावनी, रामघाट, श्रीअयोध्या, जैसा सुनें वैसा अक्षर २ सुना दें, श्रीहरिकथा के बड़े नेमी प्रेमी (१९५४) ॥

८० श्रीदामोदरदास जी, "नया घाट" श्री अयोध्या कथा के प्रेमी (१९५४) ॥

८१ श्री सियारामशरण जी, श्री अयोध्या, नेम से नित्य श्री जानकीवल्लभजू को संगीत सुनाते हैं; श्रीकृपानिवास जी के ग्रन्थों में अत्यन्त ही श्रद्धा रखते हैं; (१९५५) ॥

८२ श्री६ रघुनन्दनशरण जी संतनिवास श्रीअयोध्या श्रीरामचरितमानस के बड़े पंडित रसज्ञ प्रेमी १९५५

८३ श्री ५ विमलाशरण जी, सन्तनिवास श्री अयोध्या (१९५६)

८४ श्री ६ तुलसीरामदास जी साकेतवासी श्री अयोध्या रामघाटरामकिंकरदास जी की जगह में थे। इन्ही महात्मा के गृहस्तीसमय के पुत्र मुन्शी जानकी प्रसाद पेनशनर हैं, महन्त श्री ५ जगन्नाथदास जी स्वर्गद्वार पुराने थाने के पास (१९२८)

८५ श्री ६ रामवल्लभा शरण जी श्रीलक्ष्मण किला, श्रीअयोध्याजी, कृपासिंधु श्री १६ जानकीवरशरण महाराज जी के चित्रपट के पुजारी, बड़े कृपापात्र, बड़े विवेकी, प्रेमी, कवि, संगीत निपुण (१९५१) ॥

८६ श्रीजगन्नाथदासजी, साकेतवासी लक्ष्मीपूर, झाड़ी में, ज़िला सन्ताल परगना श्री १६ स्वामी रामदास जी "नृत्यकला" (साकेतवासी) के स्थान में (१९३८)

८७ परमहंस श्री ५ सीतलदास जी; कभी २ बांकीपुर पटना के श्रीभीष्मदास साकेतवासीजी के स्थान में, कभी श्री अयोध्याजी में पण्डितवर श्री १६ रामवल्लभाशरण जी महाराज के साथ; बड़े योग्य पुरुष हैं॥ (१९५६)

८८ श्री कामताशरण जी, ठाकुर जी के टहलों में कुशल(१९५५)

८९ वैष्णव श्रीसीतारामचन्द्र शरण (साकेत वासी अंक ८१ के भतीजा चेला, और अंक १०५ के गुरु

भाई) आप सब लौकिक नाते तोड़ के, अपना मन धन प्राण तन श्रीप्रमोदवनविहारी जी को अर्पण करके, श्रीसाकेत को पधारे; श्री अयोध्या जी ॥ (१९४०)

९० श्री १६ सियारामशरण रूपलताजी (साकेतवासी), आनन्द भवन रामकोट श्री अयोध्या जी; बड़े ही प्रसिद्ध प्रेमी, शृङ्गाररस के अद्भुत भावना शाली, और श्री कृपानिवास जी के ग्रंथों के मर्म्मी दरशनीय थे (*१९३०)

९१ जयपूर निवासी महानुभाव श्री १६ सीताराम-शरण जी महाराज साकेतवासी श्री किशोरी जी के करुणापात्र, जो श्री आनन्द भवन में आके ठहरा करते थे; विशेष आवेशी; विरह दुःख तथा अनुकम्पा सुख में कभी २ चार २ दिन पर्य्यंत सुधि हीन रहते थे कभी २ दस दिन पर संज्ञा लौटती थी; दर्शनीय थे (१९५४)

यह आप ही के सत्सङ्ग का प्रभाव है कि कविवर वेदान्ती पण्डित श्रीरामगयाप्रसाद जी (टांडा निवासी) अपनी हठ और कुतर्क छोड़कर परमहंस श्री १६ सीता-शरण महाराज जी (अंक ४ पृष्ठ४) के शरणागत होके विलक्षण सीताराम नामानुरागी होही गए ॥

९२ श्री पिताम्बरदास जी बिचरने हारे, छातावाले महात्मा, बड़ी छावनी श्री अयोध्या जी, मानो तप और भजन के स्वरूप, बड़े प्रशांत तथा देशकाली साधु; श्री अर्च्चामूर्त्ति से स्वभावतः बातें किया ही

करते हैं कि जिन सरल सप्रेम वचनों का अपूर्व अधिकार चित्तों पर होता है (*१९५७)

९३ श्री ६ "जानकीदास जी भक्तमाली," ग्राम गोर-गावां सबडिवीझन बेगूसराय ज़िला मुंगेर, सरल, प्रेमी, विशुद्ध (*१९४५) ॥

९४ श्री "जानकीदास जी बदनपूरी" श्री अयोध्या। विचरनेहारे, उपदेश में कुशल (*१९५६)

९५. श्री "रामदास" जी श्री रामशिला गया जी (मगध), साधु सेवा में प्रसिद्ध। (१९५८ *)
आप के प्रेमियों में श्री सीतामढ़ी बुलाकीपूर निवासी, गया जी के वकील बाबू श्री बै० कृ० आ० बलदेव नारायण सिंह जीहैं, कि जिनकी विषयाशक्त मति श्री सरयू जी महारानी के दरशन मात्र से पवित्र होकर श्री जानकी वल्लभ अवधकिशोर के चरण कमलों में लीन हो गई॥

९६. स्वामी श्री लक्ष्मणदास जी रामायणी के कृपा-पात्र "श्रीगंगादास" जी महाराज, श्री गया जी (मगध), अतिशय वैराग्य और नेम प्रेम युक्त, केवल केले के छाल की लिंगोटी मात्र रखते हैं और सदैव प्रभु के भजन में मग्न रहते हैं॥ (१९५७ *)

* जिस सम्वत में जिन जिन वैष्णव विरक्त महोदय की विशेष कृपा इस दीन पर हुई, उन महानुभाव के नाम के साथ उसी सम्वत का अंक उपस्थित है; प्रत्येक नाम के साथ जो सम्वत है उस का तात्पर्य केवल इतना ही जानिये॥

९७ महंत श्री रामचरणदास जी, श्री ५ मणिराम जी की छावनी, श्री अयोध्या जी; बड़ीप्रसिद्धछावनी है

९८ स्वामी श्रीमहंत नरसिंहदास जी [साकेतवासी] शहर मोतिहारी जिला चम्पारण के कृपापात्र और वहां के महंत भी, श्री अयोध्या जी स्वर्गद्वार पुराने थाने के पास महान्त श्री जगन्नाथदास जी "परसा-कीजगह" के।

इन्ही के समीप, मुन्शी गौरीशंकर, (अपनी ज़मीं-दारी और वकालत छोड़के,) छपरे से आ, श्रीअवध में बसे हैं॥

९९ श्री ५ रामभूषणदास जी, विरक्त, मधुकर, श्रीजानकीघाट श्रीअयोध्या जी, बड़े विरही॥

आपके प्रेमियोंमें, पण्डित श्रीसीतारामप्रपन्न गया-दत्तचौबेजी (चौबेबेल ज़िला बलिया निवासी) जो श्री १६ गोस्वामीकृत "मानस रामचरित" द्वारा, जीवों के हृदय तिमिर को नष्ट करके, भक्ति प्रबोध-चन्द्रोदय की निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं, चित्त की सरलता तथा प्रियाप्रियतम के चरणाम्बुज में अनुराग, उनके दरशन मात्र ही से विदित होता है॥

१०० महात्मा श्री ६ "फकीराजी", श्रीअयोध्या जी रामकोट कैकेयी भवन। (सम्बत १९५४) साकेतवासी॥

इस स्थान के पुजारी श्रीसियारामशरण जी बड़ेही

प्रेमी शृङ्गारी हैं। यहां झूलन, वसन्त इत्यादिक सब समैया बड़े प्रेम से होते हैं॥

१०१ तिर्हुत सुरसर के समीप के "नवाही" स्थान के परमहंस श्री ६ रामचरणदास जी महाराज, बड़े उदार हैं और विख्यात हैं (सम्बत् * १९५५)

१०२ महंत श्री "राममनोहर प्रसाद" जी, श्रीराम-प्रसाद जी की बड़ी जगह, श्रीरामकोट श्रीअयोध्याजी।

आपके उत्साह से "श्रीअयोध्यामाहात्म्य" अनुसार १५०(डेढ़सौ] तीर्थों पर, नामांकित पत्थर लगाए गए हैं, जिस्में पण्डित श्रीरामनारायण दास जी ने बड़ा परिश्रम कियाहै ("तीर्थविवेचनीसभा" की सहायतासे)॥

१०३ महांत श्री"सरयू दास" जी, प्रमोदवन श्री अयोध्या जी, कथा के प्रेमी॥

इन्हीं के: पड़ोसमें, "श्रीजानकीदास जी चतुर्भुजी" गुरुनिष्ठ, सन्तभगवन्तकेकैंकर्य्यमें उपस्थित, कथा प्रेमी

१०४. महंत श्री दयालदास जी रामायणी जी की कुटिया, प्रमोदवन, श्री अयोध्या जी, जिन के चेले श्री हरिनाम दास जी॥

१०५ महान्त श्री रघुबरदास जी, साकेतवासी, परसा ज़िला छपरा सारन, अंक ८९ के गुरुभाई (१९४०*)

१०६ श्री महंत रामप्रपन्न जी, रीवां मन्दिर के तथा श्री अयोध्या-रत्नसिंहासन के, दोनों जगहों के

महन्त हैं (१९५२*) बड़े शान्त ॥

१०७ महान्त, श्री जानकी वर शरण जी श्री जानकी घाट श्री अयोध्या "श्री ६ महाराज रामचरणदास जी मानस टीकाकार करुणानिधान" के स्थान में ॥

श्रीजानकीघाट में " जय " बुलाने वाले बड़े प्रेमी महात्मा रहते हैं; तथा " प्रेमीजी " के नामसे ख्यात श्रीरामप्रिया शरण जी, जो कथा के प्रसिद्ध प्रेमी हैं ॥

१०८ महंत श्री लालदास जी तपस्वी जी की छावनी, श्री रामघाट श्री अयोध्या जी ॥

(दोहा)

काहू के बल जाग जग, गुन करनी की आस ।
भक्त नाम माला अगर, उर नारायण दास ॥ १ ॥
अग्र अनुग यश गाव जे, सीतापति तेहि होहिं बश ।
हरिसुयशप्रीति हरिदासकहँ, हरिहि भावहरिदासयश ॥२॥
भक्त दाम जिन जिन कथी, तिन की जूठनि पाय ।
मति अनुसार अक्षर दुइ, कीन्हों सिलौ* बनाय ॥ ३ ॥
सन्त जिते श्री अवध में, कथ्यौ कौन पै जाय ।
जलधि पान श्रद्धा करै, कहँ चिरि पेट समाय ॥ ४ ॥
☞ श्री मूरति सब वैष्णवा, लघु दीरघ गुनगाध ।
आगे पीछे बरनते, जनि मानिय अपराध ॥ ५ ॥

---

* "सिल" वृत्ति; विनयांवुनियां ॥

"भक्तन के शुभ चरित अमित महिमा सुखकारी।
किमि बरनों मैं लोह चुम्बवत लेहु सुधारी"॥ ६॥

इति " श्रीवैष्णवनामावली "
॥ शुभम् ॥

पृष्ठ ६ अंक ९ के महात्मा की कुछवार्त्ता।
छप्पै।
श्री कामदेन्द्रमणि सुहृद रस-आवेशी एकै प्रबल॥
राघवेन्द्र बरसखा भुवन विख्यात सुहाए।
दिव्यरूप अनुभाव यहीतनु प्रगट दिखाए॥
श्री युत दम्पति नाम अदब से उचरत आनन।
वाल व्याह तजि चरित बनादिक सुनत न कानन॥
शिष्यकिए सियराम रस सम्बधी बहु मति विमल।
श्री कामदेन्द्रमणि सुहृद रस आवेशी एकै प्रबल॥ १॥

कवित्त। सम्वत उन्नीसशत साठि में कुवाँर मास सुकल परीवा वार मङ्गल विचारे हैं। अवध सुधाम में प्रभात समै सावधान, मणि रसरङ्ग, नाम युगल उचारे हैं॥ रामविरहानल में तीनौं तन जारि पाय दिव्यरूप सीताराम ध्यान उरधारे हैं। स्वामी श्री राघवेन्द्र-सखा कामदेन्द्रमणि सबै लोक त्यागि राम-धाम को पधारे हैं॥ १॥

इन महानुभाव के गुण कुछ साधुनाम माला के नवमे मणि में वर्णित हैं॥ इस १९६० सम्वत्सर में परधाम श्री साकेत को पधारे हैं। आप श्री राघवेन्द्र लाल जी के अधिक अवस्था वाले सुहृद सखा थे, श्री प्रभु के और तत्सम्बंधी माननीयों के श्री नामों को अति आदर महामान से ग्रहण करते थे भाषा संस्कृत छन्दो में भी विना श्री के संयुक्त श्री-नाम नहीं उच्चारण करते थे, वरंच श्री सीताराम सबंधी निज शिष्यो के नाम भी श्री युक्त ही ग्रहण करते थे और अति ही उदार थे, श्री युगल वात्सल्य रस के उपासकों को माता पिता के समान ही मानते थे और मधुर सखाओं को अपने कर कंज से पवाउते थे इत्यादिक आप के सख्य रसावेश युक्त गुण किस्से वर्णन हो सक्ते हैं यह दिग्दर्शनमात्र मैंने सूचन कर दिया है॥

पृष्ट ३ अंक ३ के महात्मा पण्डित श्री जानकी वर शरण साकेतवासीके जीवनचरित मेरे प्रेमी श्रीप्रभुदयाल शरण जी (हैदरगढ़) ने उर्दू में, और श्री राम वल्लभ सहाय जी, सारनपैगा निवासी, नेमि कि जो श्री राम कृपा से अब श्री अयोध्या जी में श्री हनुन्निवास के पश्चिम निज राम मन्दिर में वसते हैं, लिखे हैं ॥

कविवर मुनशी श्री राम अम्बे सहाय जी कृत—

(१) श्री जानकी सहस्त्र नाम (२) श्री राम सहस्त्र नाम (३) श्री हनुमत सहस्त्र नाम (४) श्री हनुमत जन्म विलास (५) श्री राम नवमी जयन्ती (६) श्री जानकी जन्म विलास (७) श्री शिवरात्रि माहाम्य (८) मुक्तधाम प्रकास, बड़े अक्षरों में (९) श्री अयोध्या माहात्म्य युत महातत्व प्रकाश; यह (न० ९) उर्दू में है ॥

पृष्ट ७ अंक १० के महात्मा

श्री रामरसरंगमणि सीताराम शरण जी

कृत पोथियो में से कई एक के नाम—

(१) श्री रामानन्दयशावली (२) श्री हनुमत यश तरंगिनी (३) श्री जानकी जन्म (४) श्री सरयू रसरंग लहरी तथा बारह मास माहात्म्य (५) श्री

सीताराम नाम मंजरी (६) श्री ध्यान मंजरी का तिलक (७) श्री रामस्तवराज का तिलक (८) श्री रामलीला सम्बाद (९) श्री पंचरतन (१०) श्री सीताराम पदावली (११) श्री होली विलास (१३) श्री सीताराम शोभावली (१४) श्री सीताराम नखसिखी

श्रीकृष्णदेवनारायणसिंह जी कृत-१ अनुरागमंजरी; २ अनुरागमुकुल ३ वेद सार ४ सनेहसुमन &c.

मुनशी श्री तपस्वीराम जी सीतारामीय कृत
ग्रन्थों में से कई एक के नाम—

(१) प्रेम गंग तरंग
(२) श्री सीताराम चरण चिन्ह
(३) अद्भुत रामायण
(४) श्री भक्तमाल (फारसी) رموز مہرو وفا
(५) वकाए दिल्ली (इतिहास). وقايع دهلي
(६) श्री मद्भागवत की सूची
(७) श्री अयोध्या माहात्म्य
(८) कथामाला । इत्यादि

श्रीवैष्णवनामावली श्रीसीतारामार्पण ॥

"हरिसुयशप्रीति हरिदासकी, हरिहिभाव हरिदासयश" ॥
"हरिको निजयशसें अधिक भक्तन जसपर प्यार" ॥

॥ श्री ॥

श्रीमारुतिबीरकला की जय ।

यह " श्रीवैष्णवनामावली, "
☞ "श्रीभक्तमाल" जी के आदि में ,
मङ्गलाचरण रूप निवेदित है ॥

(दोहा)

" मंगल आदि विचारि रह, वस्तु न और अनूप । हरिजन के यश गावतें, हरिजन मंगलरूप ॥१॥

भक्तन की नामावली, जे सुनि हैं चितलाय । ताकैं भक्ति बढ़ै घनी, श्रीहरि होइँ सहाय " ॥२॥

॥ श्रीः ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

॥ श्रीमते रामानन्दाय नमः ॥

भक्तमाल सटीक.

अर्थात्

स्वामी श्री नाभाजी कृत मूल छप्पै

तथा

श्री प्रियादासजी प्रणीत टीका कवित्त,

अनेक प्रतियों से बड़े परिश्रम से संशोधित

और

"भक्ति सुधा स्वाद" वार्त्तिक भाषा तिलक

सीताराम शरण भगवान् प्रसाद

विरचित

श्री अयोध्याजी से

प्रकाशित

श्रीकाशी [श्री विश्वनाथपुरी] बनारस

चन्द्रप्रभा यन्त्रालय में मुद्रित ।

सन् १९०२ सम्वत् १९५९

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

॥ श्लोक ॥

श्रीरामं रामभक्तिं च रामभक्तांस्तथा गुरून् ।
वाक्कायमनसा प्रेम्णा प्रणमामि पुनः पुनः ॥

॥ दोहा ॥

जय श्रीसिय, सियप्राणप्रिय, सुखमा शील निधान ।
भरत, लखन, जय रिपुदमन, जन रक्षक हनुमान ॥ १ ॥

नमोनमोब्राह्मणेभ्यो-



वैष्णवेभ्योनमोनमः।

॥ दोहा ॥

"वह सोभा समाज सुख कहत न बनै खगेश ।
बरनैं शारद शेष श्रुति सो रस जान महेश" ॥ २ ॥
"यहि बिधि कृपा रूप गुण धाम राम आसीन ।
धन्य ते नर यहि ध्यान जे रहत सदा लौ लीन" ॥ ३ ॥

१९५९] श्रीअयोध्याजी प्रमोदवन कुटिया [१९०२

(S. B. S. B. P.)

श्रीअयोध्यासरयूभ्यां नमः।

श्रीसीताराम

ओम् नमो भगवते हनुमते श्रीरामदूताय।

॥ श्रीमते रामानन्दाय नमः ॥

अथ श्रीभक्तमाल सटीक

भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु, चतुर नाम बपु एक।
इनके पद बंदन किये, नाशहिं विघ्न अनेक ॥

अथ टीकाकर्त्ता श्री प्रियादास जी
का मंगलाचरण, तथा आज्ञानिरूपण।

(कवित्त)

महाप्रभु "कृष्णचैतन्य," मनहरन जू के चरण को ध्यान मेरे, नाम मुख गाइये। ताही समय "नाभा जू" ने आज्ञा दई, लई धारि, टीका विस्तारि भक्तमाल की

सुनाइये। कीजिये कवित्त बंदछंद अति प्यारो लगै, जगै जगमांहि, कहि, वाणी बिरमाइयै। जानों निजमति, ऐपै सुन्यों भागवत शुक द्रुमनि प्रवेश कियौ, ऐसेई कहाइयै ॥ १ ॥

अथ "भक्ति सुधा स्वाद" वार्त्तिक तिलक।

ॐ नमो भगवते हनुमते श्रीरामदूताय। श्रीचारुशीलादेव्यै नमः। श्रीचन्द्रकलादेव्यै नमः। श्रीमत्यै रामानन्दाये नमः ॥ श्री नृत्यकलायै नमः। श्री हंसकलायै नमः ॥ (श्लोक) यं प्रव्रजंतमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव। पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोस्मि ॥ १ ॥

(दो०) भक्तमाल आचार्य्य वर श्री नाभा पद कंज।
प्रियादास पद कमलपुनि बंदौं मङ्गल पुंज ॥
सन्त सरलचित जगत हित, जानि सुभाव सनेहु।
बाल बिनय सुनि करि कृपा, रामचरण रति देहु ॥

स्वामी "श्री नाभाजी" करुणासिंधु कृत "श्रीभक्तमाल" जी की प्रसिद्ध टीका श्रीभक्तिरसबोधिनीके कर्त्ता, श्रीप्रियादासजी कृपानिधि, यों कहतेहैं कि "महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य मनहरण" पद कंज का, तथा तद्रूप मनहरण [निज स्वामी] "श्री मनोहर दास" जी का, ध्यान एक समय अपने मन में मैं कर रहा था, और साथ

ही साथ श्री नाम कीर्त्तन भी। उसी समय गोस्वामी श्री नाभाजी ने मुझे आज्ञा दी कि भक्तमाल की विस्तृत टीका करो, और ऐसी कि कवित्त छंद से बंध बहुत ही मधुर तथा प्रिय लगे, और जगत में प्रसिद्ध होवे॥ ऐसी आज्ञा दे जब आप की बाणी शान्त हो गई, तब अपनी मति अति मंद जानकर पहिले अपने को सकोच तो निःसन्देह बड़ा भारी हुआ ही, परन्तु यह विचार करके आज्ञा को सीस पर धर लिया कि "श्रीमद्भागवत" में सुन चुकाहूं कि "परमहंस श्री शुकदेव जी" वृक्षों में प्रवेश करके *स्वयं बोल उठे थे और "शुकोऽहं, शुकोऽहं" कहने लगे थे; ऐसेही मुझ जड़मति में भी स्वयं श्रीनाभा जी ही प्रवेश करके अपनी कृपासे ही मुझ से भी तिलक बनवालेंगे। इसमें आश्चर्य्य वा संदेहही क्या है॥

[दो०] सरल वरण, भाषा सरल, सरल अर्थ मय मान।
तुलसी सरलै सन्त जन जाइ करिय पहिचान.॥

* श्री मद्भागवत के आरम्भ में ही कहा है कि जब श्री शुकदेव भगवान् जन्मते ही परम विरक्तिमान् सब त्याग कर, घर से निकल बन को चल दिये, और उनके पिता श्री व्यास भगवान् पुत्र के (उनके) विरह में कातर होकर उनके पीछे पीछे "हे पुत्र! हे पुत्र!" ऐसा पुकारते हुवे साथ हो लिये; तब योगीश्वर सर्व हृदय प्रवेशक श्रीशुकदेव जी ने तो पीछे की ओर मुंह तक भी न फेरा, और न साक्षात उत्तरही

(महर्षि पिताजी को) दिया, किन्तु उस प्रदेश के समस्त वृक्षगण आप आप को बोलने लगे कि "हां, मैं शुक हूं मैं शुक हूं, क्या आज्ञा होती है?"॥

टीका का नाम स्वरूप वर्णन कवित्त।

रची कविताई सुखदाई लागे निपट सुहाई श्रौ सचाई पुनरुक्ति लै मिटाई है। श्रक्षर मधुरताई श्रनुप्रास जमकाई, श्रति छवि छाई मोद झरीसी लगाई है॥ काव्य की बड़ाई निज मुख न भलाई होति नाभा जू कहाई, याते (ताते) प्रौढ़िकै सुनाई है। हृदै सरसाई जोपै सुनियै सदाई, यह "भक्ति रस बोधिनी" सुनाम टीका गाई है॥ २॥

वार्त्तिक

कविताई ऐसी रची है, कि श्रति सुहाई (सुहानेवाली) श्रौर सुखदाई लगती है; पुनरुक्ति के दोष को भी मिटा डाला है; सचाई, श्रौर कोमल श्रक्षरों की मधुरता, (रसों के स्वरूपादि श्रौर टीका के बिचित्र चमत्कार,) तथा श्रनुप्रासों श्रौर यमकों की छबि ने मोद (श्रानन्द) की वृष्टि सी बरसाई है। श्रस्तु। श्रपने काव्य की प्रशंसा ("आप मुंह मिट्ठू") श्रपने ही मुख से कहनी, कुछ श्रच्छी बात तो नहीं ही है, परन्तु श्री नाभाजी ने कहलाई है, (जैसी कि ऊपर

निवेदन कर चुकाहूं, अतएव पुष्टता से कहने में आगई; सज्जन विचारमान इस्को क्षमा करेंगे ॥ यदि इसको नित्यशः कोई पढ़े सुनेगा तो अवश्यमेव उस्का अंतःकरण श्री हरि भक्ति महारानीजी की कृपा से निःसन्देह सरस हो आवेगा ॥ ऐसी टीका की है (गाई है) और इस्का नाम "भक्तिरसबोधिनी" है ॥

श्रीभक्ति स्वरूप। कवित्त।

'श्रद्धा' ई (ही) फुलेल औ उबटनौ 'श्रवण कथा,' मैल अभिमान, अंगअंग नि छुड़ाइये। 'मनन' सुनीर, अन्हवाइ अंगुछाइ 'दया', 'नवनि' वसन, 'पन' सोधो, लैलगाइये ॥ आभरन 'नाम हरि,' 'साधुसेवा' कर्णफूल, 'मानसी' सुनथ, 'संग' अंजन, बनाइये। "भक्ति महारानी" कौ सिँगार चारु, बीरी 'चाह', रहै जो निहारि लहै लाल प्यारी, गाइये ॥ ३ ॥

वार्त्तिक।

निम्न लिखित सुसिँगार श्री भक्ति महारानीजी के जानिये। जो इन्हें निरखता रहता है उसको श्री प्रिया प्रियतम (श्रीराम प्रिया सीताजी तथा श्रीमज्जनकनन्दिनी प्राणवल्लभ रामचन्द्रजी) कृपा करके आ मिलते हैं। ऐसा सब वेद पुराण शास्त्रादि में गाया हुआ है ॥

१. उबटन=कथा का सुना। भगवत लीला तथा भक्तों के यश का श्रवण।

(चौ०) रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस विशेष जाना तिन नाहीं॥ जिनके श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरिनाना॥ भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिनके हृदय सदन शुभ रूरे॥ २ मैल=अभिमान। सब प्रकार के अर्थात् भीतर के बाहर के अहंकार (चौ०) उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी। बेगि सो मैं डारिहौं उपारी॥ अहंकार अति दुखद डमरुआ इत्यादि। (दो०)विद्या रूप सुजाति धन इत्यादिक अभिमान। जब लगि उर तब लगि कभू मिलें न श्री भगवान॥

३ फुलेल=श्रद्धा। शास्त्र और आचार्य्य के वचनों इत्यादिक में प्रीति प्रतीति सहित स्पृहा।

(श्लोक) भवानीशङ्करौ बन्दे 'श्रद्धा' विश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।
सात्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा, कर्म्म श्रद्धा तु राजसी।
तामस्यऽधर्म्मे या श्रद्धा, मत्सेवायान्तु निर्गुणा (भागवते)

(चौ०) रघुपति भक्ति सजीवन मूरी। अनूपान 'श्रद्धा' शुचि पूरी॥

४ सुनीर—मनन। मन में उसको चिंतवन करना कि जो कुछ श्रवण किया है वा जो कुछ पढ़ा है,

श्रीहरिकृपासे ऐसे सविवेक चिन्तवन मनन रूपी निर्मल सुगन्धित पवित्र अनुकूल सुन्दर जल से स्नान, [मान-हारी दीनसुखद अभिमानभंजन गर्वप्रहारी प्रणतहित-कारी भगवतचरित्रों के श्रवण रूपी उपटन के अनन्तर] योग्य ही है; तथा दया रूपी अङ्गप्रछालन और नवनि (नम्रता) रूपी वसन (वस्त्र) की आवश्यकता भी, भक्तिके और २ अनेक सुसाधनोंसे पूर्व ही समझना चाहिये। क्योंकि यह तो प्रसिद्ध ही है कि उपटन, स्नान, तथा वसन, सब शृङ्गारों और भूषणों से पहिले ही अत्यावश्यकीय हैं। (सो०) विद्या, बोध, विवेक, सुमति, ज्ञान, सद्गुणअमित। श्रीहरिरहस अनेक, प्राप्ति "श्रवण" ते; रामहित!॥ (चौ०) "मनन" बिना है विद्या भार। "मननशील" सद्गुण आगार॥ विधुवदनी सबभांतिसँवारी। सोह न "वसन" बिना वरनारी॥

५ अँगुछाइब (अङ्गप्रछालन) = "दया"। करुणा से द्रवना, क्षमा करनी, छोहसे पघिलना, कृपासे पसी-जना, अहिंसा, अनुकम्पा; भलेबुरे जीव मात्र के क्लेश को देखसुनके दुखी होना। (दो०) "दया" धर्मकी मूल है, यह प्रसिद्ध जगमाहिँ। शास्त्रनिपुण केसोउ कोउ, भक्ति "दया" बिनु नाहिँ (चौ०) परहित बस जिनके मन माहीं। तिनकहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

६ वसन (विशुद्ध सुन्दर अनुकूल वस्त्र)="नवनि" मान अहङ्कार अभिमान मदादि का अभाव; नम्रता, प्रणता, दीनता, कार्पण्य, झुकना; पूर्व ही बन्दना दण्डवत करना, दूसरे के प्रणाम नमस्कार की कदापि प्रतीक्षा न करनी; अपनी निचाई समझना, अपने दोषोंको कदापि न भूलना; श्री गौरी गणपति विधाता गुरु त्रिपुरारि तमारि तो ईश ही हैं, ऋषि मुनि सुर महिसुर गो पितर माता पिता तो पूज्य हैं ही, किन्तु नरनारी गन्धर्व दनुज प्रेत और भूत मात्र को प्रणाम करके उनसे अविरल अमल "श्री हरिभक्ति" की भीख मांगनी, भगवतके अनन्यभक्तोंकी शोभा है॥ (चौ०) तब रामहि विलोकि बैदेही। सभय हृदय विनवति जेहि तेही॥ प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला वचन विगत अभिमाना॥ शाखामृग कै बड़िमनुसाई। शाखाते शाखा पर जाई। "मांगौं भीख त्यागि निज धरमू।" (चौ०) की तुम "राम दीनअनुरागी"। आएहु मोहि करन बड़ भागी॥ बरषहिं जलद भूमि नियराए। यथा नवहिं बुध विद्यापाए॥ (दो०)फलभर 'नम्र' विटप सब, रहे'भूमि नियराइ'। पर उपकारी पुरुष जिमि, 'नवहिं' सुसम्पतिपाइ॥ सत्य वचन, अरु 'दीनता' पर त्रिय मात समान। एहु पर हरि जो ना मिले तुलसीदास जमान (क०) हौं तो सदा खर

की असवार तिहारेइ नाम गयन्द चढ़ायो ॥ (पद) यह दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई। (चौ०) सकल शोक दायक "अभिमाना"। संसृत मूल शूलप्रद नाना॥ दम्भ कपट "मदमान" नहरुआ। "अहंकार" अति दुखद डमरुआ। (दो०) दीनरहा नहिं दीनभा, नाहिं दीन पद भास। दीन बन्धु केहि बिधि मिलैं बिन दीनता निवास॥

७ सोंधो (अरगजा, चन्दन, सुगन्ध)="पन"। श्रीगिरिराजकिशोरीकृपासे नियम, नेम, व्रत, दृढ़ता, अनन्यता। (चौ०) रामभक्ति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीश प्रवीना॥ तजौं न नारद कर उपदेशू। आपु कहैं शतबार महेशू। (दो०) चातकि की, अरु मीनकी, भक्तनकी 'पन' एक। सुयश 'नेम' विख्यात जग, धनि धनि धन्य सो टेक॥

तथा एकादशी व्रत, ऊर्द्ध पुण्ड, और वैष्णवों के चरणरज को सीसपर रखने का नेम और पन॥

८ आभरण (अनेक* भूषण)="हरिनाम"। श्रीशारदाकृपा और श्रीनारददया से "श्रीसीताराम" नाम का कीर्त्तन, अखण्ड तैलधारावत रटना जपना उस्में रमना; रागस्वर से उस्का मधुर कीर्तन सप्रेम; "चारु हरिनाम लेत अश्रुअन झरी है" (चौ०) पुलक गात, हिय सियरघुबीरू। जीह. नाम जप, लोचन

नीरू ॥ तथा, श्रीहरिसहस्रनाम, युगलनाममंजरी, और भगवन्नामकीर्त्तन का पाठ करना नेमप्रेमपूर्वक ☞ *केश सुधारने और बेणी सँवारने तथा सेन्दुर से भूषित करने के उपरान्त, बेन्दी; अरगजा चन्दन सुगन्ध; और तिलक; तिल, कस्तूरिबिन्दु, दन्त शृङ्गार, सुरमा, [काजल, अंजन] मुखराग [बीरी]; इत्यादि; पुनि तिनके अनन्तर नाना मणि जटित स्वर्णाभरण पुष्पों के भूषण ॥ भूषण विविध प्रकारके हैं और अनेक हैं जैसे, चन्द्रिका, सीसफूल, मँगटीका, बँदनी, चूड़ामणि, [नथिया] बेसर, [कर्णफूल] बुलाक, कंठिका, चम्पाकली, झूमक, मुक्ताहार, पँचलरी, कंकना चूड़ी, मुद्रिका, पहुंचि, इत्यादि ॥

श्रीसीतारामनाम प्रतापप्रकाश, कवित्तरामायण, बिनय पत्रिका, तथा श्रीमानसरामचरित और "नाम तत्व भास्कर" में "श्रीनाम प्रभाव" देखना चाहिये। यहां केवल एक श्लोक लिखे देताहूं।

(श्लोक) कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य। विश्रामस्थानमेकं कविवर वचसां जीवनं सज्जानानां बीजं धर्म्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥ [चौ०] कहौं कहां लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुण गाई ॥ [दोहा०] राम नाम नर

केसरी, कनक कशिपु कलिकाल। जापक जन प्रहलाद जिमि पालहिं दलि सुरसाल ॥ बरषाऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास। राम नाम वर वरण युग श्रावण भादों मास ॥ राम नाम जो चित धरै सुमिरै निशिदिन सोइ। योग यज्ञ तप, व्रत, सकल, तेहि पटतर नहिं कोइ ॥

कवित्त

ज्ञान औ विराग तप, जोग, जाग, त्याग करै सिद्ध भए तरै माया बीचही में लूटती। तीरथ व्रतादि दान साधना अनेक धरै पचि मरै चावल लहै न भूसी कूटती ॥ भक्ति महारानी भव मानी युक्ति जानि परै ताहू में तो लालच लबारी आदि जूटती। शम्भु सिर सुरसरि धरी भनी रंगमनी राम नाम जाप बिनु ताप त्रय न छूटती ॥ १ ॥

९ कर्णफूल=मन, तन, अन, धन, बचन से "हरि-सेवा, तथा साधु सेवा"। बाएं कान का भूषण भगवत् कैंकर्य्य को जानिये और दाहिने कान का अलङ्कार भागवत सेवा को समझिये क्योंकि एक कुछ गुप्त होता है और दूसरा कुछ प्रत्यक्ष सा।

[चौ०]उमा! रामस्वभाव जिन जाना। तिनहि भजन तजि भाव न आना ॥ सेवहिं लषण सीयरघुबीरहि। जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहि॥ [चौ०]सुमिरन, सेवा,

प्रीति, प्रतीती। गुरु शरणागति भक्ति कि रीती॥ सीतापतिसेवक सेवकाई। कामधेनु शत सरिस सुहाई॥

१० सुनथ (नाक की नथिया)="मानसी" अष्टयामरीति, मानस पूजा; भावना; निरन्तर सुरति से स्मरण; सुरति से सप्रेम परिचर्य्या; भक्तियोग; ध्यान; गुप्तस्मरण; मनही बन्धन तथा मोक्ष का कारण॥ है

(चौ०) रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सौ बार हिये की॥ "मन परिहरै चरण जनि भोरे"। पुनः, "मन तहँ जहँ रघुपति बैदेही"॥

यह वार्ता किसको विदित नहीं है कि सब अंगों के सिँगारों तथा भूषणों आभरणों में नाक कान और आंखों के ही शृङ्गार मुख्य हैं; पुनः तिन में भी नाक की नथिया तो सर्वोत्तम है वरञ्च सुहाग ही कही और जानी जाती है॥

११ अंजन [काजल सुरमा]="सुसंग"। सतसंग, सन्तसंग, साधु संगति, सम्प्रदायी सजाती भक्तों का संग; सद्ग्रन्थ विचार; श्रीगुरुहरिहरिजन चरचा आदि; तथा, भक्ति शास्त्रावलोकन, सज्जन संसर्ग, महात्मा का दरस परस, भागवत धर्म वेत्ता महानुभावों से जिज्ञासा, हरिभक्त समागम, निजसम्प्रदाय के रहस्य का ज्ञान, सन्तासन्तलक्षण विवेक, श्रीसीतारामगुणस्वभाव का कथन परस्पर॥

(सवैया) सो जननी, सो पिता, सोइ भ्रात, सो भामिनि, सो सुत, सो हित, मेरो। सोइ सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर, साहिब, चेरो॥ सो तुलसी प्रिय प्राण समान, कहां लौ वनाइ कहौं बहुतेरो। जो तजि देह को गेह को नेह, सनेह सो राम को होइ सवेरो॥

(चौ०) मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि यतन जहां जे पाई॥ सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहु वेद न स्रान उपाऊ॥ (चौ०) सत्संगति मुद-मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

(दो०) तात! स्वर्ग स्रपवर्ग सुख, धरिय तुला एक स्रंग। तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

१२ बीरी [पान, स्रधरराग]="चाह (नेह, भक्ति)"

[चौ०] स्वारथ सांच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥ (सो०) लोभिहि प्रिय जिमि दाम, कामिहि नारि पियारि जिमि। हरि पद "रति" निःकाम, "भक्ति" सुसंज्ञा ताहि की॥ "भक्ति"=प्रेम, अनुरक्ति, चाह, इश्क़, लव, लौ, लगन। भाव, भजन, स्रासक्ति, राग, प्रीति, स्रनुराग, रति॥

[सूत्र] "सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे" [श्रीशाण्डिल्य]

[सूत्र] "सा कस्मै परमप्रेमरूपा" [श्रीनारद]

भक्ति।

'भक्ति'=भजना, भजनकरना, प्रणय, प्रिय लगना, सेवा करनी, चाहना, प्यार करना, प्रीति, प्रेम, स्नेह, अनुरक्ति, अनुराग, परम प्रेम, परा प्रीति, रति, प्रियतम बिन दुखी रहना, प्यारे बिन न जीना, सकल प्यारी वस्तुओं को प्रियतम पर न्योछावर करना, कैंकर्य्य प्रिय लगना, सदैव चिन्तवन, प्रियतम की प्रसन्नता में ही सुख मानना, पी पी रटना॥ "मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के", "स्वाति सलिल रघुवंश मणि, चातक तुलसी दास" (चौ०) प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना। "प्रेम" ते प्रगट होहिं मैं जाना॥ रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जे जाननिहारा॥ देवि! परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥

[श्लोक] मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे [१८–६५] मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमो मताः [१२-२] मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः [१२–८] अभ्यासेप्यसमर्थोसि मत्कर्मपरमो भव। मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि (१२–१०)

"थोरे महँ सब कहौं बुझाई ।
सुनहु तात ! मति मन चितलाई ॥
[चौ०] प्रथम हि बिप्र चरण अति प्रीती । निज निज धर्म निरत श्रुति रीती ॥ यहि कर फल पुनि विषय विरागा । तब मम चरण उपज अनुरागा ॥ श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं । *

*[श्लोक—श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ १ ॥]

मम लीला रति अति मन माहीं ॥ सन्त चरण पंकज अति प्रेमा ॥ मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥ गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा । सब मोहिकहँ जानै दृढ़ सेवा ॥ मम गुण गावत पुलक शरीरा । गद्गद-गिरा नयन बह नीरा ॥ काम आदि मद दम्भ न जाके तात निरन्तर बस मैं ताके (दो०) मन क्रम बचन कपट तजि भजन करै निःकाम । तिनके हृदय कमल महँ करौं सदा विश्राम ॥ (चौ०) प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा । (दो०) गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भक्ति अमान । चौथि भक्ति मम गुण गण करै कपट तजि गान ॥ (चौ०) मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ॥ छठ दम शील विरति बहु कर्मा निरत निरन्तर सज्जन धर्म्मा ॥ सातँव सम मोहि मय जग देखा । मोते सन्त अधिक करि लेखा ॥ आठँव यथा लाभ सन्तोषा ।

सपनेहु नहिँ देखै पर दोषा ॥ नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना ॥ सन्मुख होय जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नाशौं तबही ॥ जननी जनक बन्धु सुतदारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा ॥ सब के ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बांध बटि डोरी ॥ समदर्शी इच्छा कछु नाहीं। हर्ष शोक भय नहिं मन माहीं ॥ अस सज्जन मम हिय बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे ॥ भक्ति स्वतन्त्र सकल सुखखानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥ पुन्यपुंज बिनु मिलहिं न सन्ता। सतसंगति संसृति कर अन्ता ॥ पुण्य एक जगमहँ नहिँ दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा ॥ सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करै द्विज सेवा ॥ (दो०) औरौ एक गुप्त मत सबहि कहौं कर जोरि। शंकर भजन बिना नर भक्ति न पावइ मोरि ॥ (चौ०) कहहु भगति पथ कौन प्रयासा। योग न मख जप तप उपवासा ॥ सरल सुभाव न मन कुटिलाई। यथा लाभ सन्तोष सदाई ॥ मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहां विश्वासा ॥ बहुत कहौं का कथा बढ़ाई। यहि आचरण वश्य मैं भाई ॥ बैर न विग्रह आस न त्रासा। सुख मय ताहि सदा सब आसा ॥ अनारम्भ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दक्ष विज्ञानी ॥ प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृण सम विषय स्वर्ग अपवर्गा

भगति पक्ष हट नहिं शठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥ (दो०) मम गुण ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह। ताके सुख सोइ जानै चिदानन्द सन्दोह"॥

श्री भक्तमाल सम्पूर्ण ही श्री "भक्ति" शब्द का अर्थ ही अर्थ तो है ;तो फिर अब भक्ति का अर्थ अलग क्या लिखा जावे॥

इति "भक्ति के स्वरूप" का संक्षिप्त वर्णन

अथ भक्तिपंचरस वर्णन कवित्त।

"शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य, औ शृङ्गार चारु" पांचो रस सार विस्तार नीके* गाये हैं। टीका को चमत्कार जानौगे बिचारि मन, इन के स्वरूप मैं अनूप लै दिखाये हैं॥ जिनके न 'अश्रु पात पुलकित गात कभूं, तिनहू को "भाव" सिन्धुबोरि सो छकाये हैं। जौलौं रहैं दूर रहैं बिमुखतां पूर, हियो होय चूर चूर नेकु श्रवण लगाये हैं॥ ४॥

(* सत्रहवीं शताब्दी में अर्थात् सम्बत साढ़ेसोलह सौ तथा सत्रहसौ के बीच में, श्री "भक्तमाल" जी का अवतार जाना गया है। और, सम्बत १७६९ में श्री प्रियादास जी ने "भक्तिरसबोधिनी टीका" लिखी है, अनुमान तथा अनुसंधान से ऐसाही निश्चय किया गया है।)

वार्त्तिक।

भक्ति के जो पांच रस हैं, नाम (१) शान्तरस (२) दास्यरस (३) सख्यरस (४) वात्सल्य रस तथा (५) दिव्य शृङ्गार रस ("रसराज" वा "उज्वल" रस), तिन पांचो रससार की भली भांति बिस्तार व्याख्या आप इस "भक्तिरसबोधिनी" में पाइयेगा॥ (बिचारमान महाशय!) आप स्वतः अपने मन में बिचार करके टीका के चमत्कार को जान लीजियेगा, कि इन पांचो रसों के स्वरूप कैसे अनूप दिखलाए गए हैं॥ जिन पाखानहृदय प्राणियों की आंखों से कभी अश्रुबिन्दु नहीं निकलता, और जिनका अंग कभी पुलकित नहीं होता, ऐसे २ कठोरहिय जनों को भी श्रीसीताराम कृपा से प्रेम भाव के समुद्र में कहां तक बोर के छकाया है, सो स्वयं आप समझ लीजियेगा॥ यदि तनकभी कान लगाके भक्तों के भाव तथा भगवत भागवतयश को वैसे लोग भी सुनें, तो उनके भी, प्रेम से चूरचूर चित्त, गद्गद कण्ठ, पुलकतनूरुह, और नेत्रों से प्रेमाश्रुप्रवाह बह आवेंगे। पूरे बिमुख तो वे भी केवल उसी कालतक रहेंगे कि जब तक "भक्त माल" तथा "भक्तिरस बोधिनी" से न्यारे रहेंगे॥

☞ भक्ति के पांच रसों (१) "शृङ्गार (२) सख्य (३) वात्सल्य (४) दास्य और (५) शान्त रस की व्याख्या का संक्षेप कुछ, अब आगे यन्त्रो में लिखा जाता है॥

रस	विभाव			अनुभाव	सात्विक भाव	व्यभिचारी भाव	स्थाई भाव.
	विषयालम्बन	आश्रयालम्बन	उद्दीपन				
"सख्य रस"	मित्रसुखद द्विभुजसुवेष चतुर शिरोमणि सत्यसंकल्प सुखसिन्धु श्रीरामभद्र रघुनाथ अवध- विहारी	लाललाडले लखन जी, श्रीसुग्रीव, श्रीविभीषण, श्रीवीरमणि; राजकुमार, इत्यादि	भूषण, धनुष शर; मधुर वचन; &c.	साथ साथ भोजन खेल मृगया, विचित्र परिहास; &c.	१ रोमांच २ स्तम्भ ३ प्रलय ४ स्वेद ५ विवर्ण ६ कम्प ७ अश्रु ८ स्वरभंग	३३ भाव (पृष्ठ २३ देखिये)	मित्र भाव निरन्तर

रस	विभाव			अनुभाव	सात्विकभाव	व्यभिचारी भाव	स्थाई भाव
	विषयालम्बन	आश्रयालम्बन	उद्दीपन				
"शृङ्गार" रस वा "उज्ज्वल" रस वा "रसराज"	माधुर्य्य-प्रेमसिन्धु, रूपमाधुर्य्य कमनीय किशोर मूर्त्ति, प्राणवल्लभ, श्री जानकी जीवन रामचन्द्र शोभाधाम छविसिन्धु	श्री जनककिशोरी जी	कमनीयता; वसन्त ऋतु, कोकिल कूक, पवन, पावस; कटाक्ष, मुस्क्यान; वचन, शील, परम शोभा	श्रीकिशोरी जी की संकल्प; प्रियतमका मंदस्मित भ्रूविक्षेप स्पर्श, कटाक्ष; कर में कर नयन में नयन	१ रोमांच २ स्तम्भ ३ प्रलय ४ स्वेद ५ विवर्ण ६ कम्प ७ अश्रु ८ स्वरभंग	३३भाव (पृष्ठ २३ में देखिये)	प्रियतम पंदरति; मनोहर छवि की अचला सुरति; भावना; प्रीति प्रणय

* अथ ३३ व्यभिचारी भाव।

१ निर्वेद	१० चिन्ता	१९ निद्रा	२७ वितर्क
२ ग्लानि	११ त्रास	२० सुषुप्ति	२८ अवहित्था
३ शंका	१२ ईर्षा	२१ संज्ञा	१९ व्याधि
४ श्रम	१३ आमर्ष	वा अवबोध	
५ धृति	१४ गर्व	२२ व्रीड़ा	३० उनमाद
६ जड़ता	१५ स्मृति	२३ मोह	३१ विषाद
७ हर्ष	१६ अपस्मृति	२४ मति	३२ चपलता
८ दीनता	१७ मरण	२५ आलस्य	३३ औत्सुक्य
९ उग्रता	१८ मद	२६ आवेश	

(श्लोक)

पञ्चधा भेदमस्तीह तच्छृणुष्वमहामुने! शान्तो दास्यस्तथा सख्यः वात्सल्यश्च शृङ्गारकः ॥ १ ॥ मधुरं मनोहरं रामं पतिसम्बन्धपूर्वकं। ज्ञात्वा सदैव भजते सा शृङ्गार रसाश्रया ॥ २ ॥ (श्रीहनुमत् संहिता)

[श्लोक] मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्परायणः ॥
(भ० गी अ० ९ श्लो० ३४)

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहं।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थसर्वशः ॥"
(भ० गी० ६)

रस	भाव			अनुभाव	सात्विक भाव	व्यभिचारी भाव	स्थाई भाव
	विषयालम्बन	आश्रयालम्बन	उद्दीपन				
"वात्सल्य" रस	दाशरथी श्रीकौशल्या नन्दवर्द्धक बालक राम लला जी; सियावर सीतापति; महाराज कुमार; सुकुमार	अम्बा श्रीकौशल्या महारानी जी, म० श्रीदशरथजी; अम्बाश्रीसुनयना जीमहारानी; अम्बा श्री सुमित्रा जी;	मीठे तोतरे २ बचन; बुलाक, घुंघुरू, काला-विन्दु; बाल-लीला;	खिलाना; लाड़; दुलार; खेलौने देना; जन्मोत्सव	१ रोमांच, २ स्तम्भ, ३ प्रलय ४ स्वेद ५ विवर्ण ६ कम्प ७ अश्रु ८ स्वरभंग	अंगताप कृशता, जागर्ण, आलंबन शून्यता, आधृति, उन्माद, मूर्च्छा, प्रहर्ष, मृत्यु	श्रीरामलाल जी में अलोल मन॥ "सुतविषयक हरि पद रति होऊ"॥

रस	विभाव			अनुभाव	सात्विक भाव	व्यभिचारी भाव	स्थाई भाव
	विषया लम्बन	आश्रयालम्बन	उद्दीपन				
"दास्य" रस	सर्वेश्वर	श्रीहनुमत	शरण सुखदता, सेवक प्रियत्व	आज्ञा	१ रोमांच	चितघड़क,	अविरल
	भक्त वत्सल	श्रीप्रह्लाद		पालन;	२ स्तम्भ	दुर्बलता,	भक्ति;
	दीनदयालु	ब्रह्माजी,		तुलसी	३ प्रलय	रंगविकार,	तैलधारा-
	सेवक सुखद	शिवजी;		कंठी,	४ स्वेद	विराग,	वत स्मरण;
	ब्रह्म	भक्त		तुलसीमाला	५ विवर्ण	मूर्च्छा,	प्रेम;
	सच्चिदानन्द	मात्र		ऊर्द्ध	६ कम्प	व्याधि,	भजन,
	जगदेकत्राता			पुण्ड्र;	७ अश्रु	उन्माद,	सेवा
	व्यापक			संस्कार;	८ स्वरभंग	स्तम्भ,	
	श्रीसीतापति			भक्ति		प्रहर्ष,	
	राम भद्र					मृत्यु,	
	पतितपावन						
	अशरण शरण						

रस	विभाव			अनुभाव	सात्विक भाव	व्यभिचारी भाव	स्थाई भाव
	विषयालम्बन	आश्रयालम्बन	उद्दीपन				
"शान्ति" रस	इष्ट श्रीरामचन्द्र हरि पर ब्रह्म सच्चिदानन्द जगदेक-कर्त्ता भगवत विश्वम्भर व्यापक सर्वज्ञ शार्ङ्गधर श्रीसीतापति परमात्मा	ब्रह्मा, शिव सनकादि, श्रीनारद श्रीवशिष्ठ, श्री अगस्ति, इत्यादि शान्त रस वाले भक्त	उपनिषद्द विचार	नासाग्रपर दृष्टि; अवधूत च्येष्टा; परमवैराग; निर्वैर; निर्ममता	१ स्तम्भ २ रोमाञ्च ३ स्वेद ४ विवर्ण ५ कम्प ६ अश्रु ७ स्वरभङ्ग ८ प्रलय	स्मृति, निर्वेद, आवेग, धृति, उत्सुकता, विषाद, वितर्क, इत्यादि इत्यादि	प्रशान्त, मग्न, निर्द्वन्द्व, समदरशी, विरक्तपर, तन्मय एकाग्र निस्पृह

(१) अथ भक्ति के शान्तिरसमें कुछ बचनः—

(श्लोक) यो मां पश्यति सर्वत्र मयि सर्वं च पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति॥ (गी० ६। ३०)
(दो०) तुलसी! यह तनु है तवा, सदा तपत त्रयताप।
शान्त होय जब "शान्ति" पद, पावै रामप्रताप॥
नासिकाग्र करि दृष्टि पुनि, धरै भेष अवधूत। निर्ममता, निर्वाक्यता, यथा शास्त्र अनुसूत॥ २॥ दारुमांह पावक लगै, तीन रूप दरसाय। जरै, बरै, हो भस्म जब, तब सो "शान्त" कहाय॥ ३॥ अति शीतल, अतिही अमल, सकल कामना हीन। तुलसी ताहि "अतीत" गनि, "शान्ति" वृत्ति लयलीन॥ ४॥ अहङ्कार के अग्नि में, जरत सकल संसार। तुलसी! बांचे सन्त जन, केवल "शान्ति" अधार॥ ५॥ ज्ञानाभूषण ध्यान धृत, ध्यानाभूषण त्याग। त्यागाभूषण "शान्ति" पद, तुलसी अमल अदाग॥ ६॥

---

(२) भक्ति के "दास्य रस" में कुछ बचनः—

(श्लो०) दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य रामस्य क्लिष्ट कर्मणः।
हनुमान् शत्रुसैन्यानाम् निहन्ता मारुतात्मजः॥
(दो०) "सेवक सेव्य भाव" बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त विचारि॥
(चौ०) सिर भर चलौं धर्म अस मोरा। सब ते "सेवक

धर्म कठोरा ॥ अस अभिमान जाय जनि भोरे । मैं "सेवक" रघुपति "पति" मोरे ॥ "सेवक" हम "स्वामी" सियनाहू । होउ नाथ ! एहि ओर निबाहू ॥ मैं मारुत सुत हनुमत बन्दर । दीन बन्धु रघुपति कर किंकर ॥ सेवक प्रिय यह सब की रीती । मोरे अधिक दास पर प्रीती ॥ सुनु कपि जिय जनि मानसि ऊना । तैं मम प्रिय लक्ष्मण ते दूना ॥ कोउ मोहि प्रिय नहिं तुमहि समाना । मृषा न कहौं मोर यह बाना ॥ "सम दरशी" मोहि कह सब कोऊ । "सेवक प्रिय,"अनन्य-गति' सोऊ ॥ तैंतिस कोटि भजैं संसार । खोटा बन्दा खोटी मार ॥ खाविन्दों का खाविन्द एक । तिस्को जपै यह कविरा टेक ॥

सीतापति सेवक सेवकाई । काम धेनु शत सरिस सुहाई ॥
"भजबे को दोई सुघर-(१) की हरि (२) की हरिदास" ॥

(३) अथ भक्ति के "वात्सल्य" रस में कुछ बचनः—

(चौ०) सुत "विषयक" हरि पद रति होऊ । मोहि बरु मूढ़ कहै किन कोऊ ॥ देखि "मातु" आतुर उठि धाई । कहि मृदु बचन लिये उर लाई । गोद राखि कराव पै पाना । रघुपति चरित ललित करि गाना ॥

(दो०) पिता बिवेकनिधान बर, मातु दया युत नेह ।
तासु "सुवन" किमि पाइ हैं अनत अटन तजि गेह ॥

(चौ०) सो "सुत" "पितु" प्रिय प्राण समाना। यद्यपि सो सब भांति अजाना॥

(गीत) बूढ़ोबड़ो प्रमाणिक ब्राह्मण शङ्कर नाम सुहायो। मेले चरण चारु चारिउ सुत माथे हाथ दि-वायो॥ (चौ०) 'सेवक, सुत' "पितु मातु" भरोसे। रहै अशोच, बनै "प्रभु" पोसे॥

(४) अथ भक्ति के "सख्य रस" में कुछ बचनः—

(श्लो०) न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः। न च संकर्षणो न श्री नैवात्मा च यथा भवान्॥
(एकादशे, २४। श्रीऊधव प्रति)

(चौ०) ये सब, मुनिवर! "सखा" हमारे। भरतहु ते मोहि अधिक पियारे॥ तुम सब प्रिय मोहि प्राण समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना॥

(स०) "जानि सिया. जू को दास पदाम्बुज को, अलि खास! अभै मोहि दीजै। जौ मिथिलेश किशोरी के दास बने रसरंगमणी, तुम्हरी जै॥"

मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं। अनुज "सखा" सँग भोजन करहीं॥ बन्धु "सखा" संग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥

(दो०) "चपल तुरंगन फेरनी, मृग तकि मारब बान। करि पन लक्षण बेधनी, सब उद्दीपन जान॥ धरि

भुज गल यतलावनी, इक सँग भोजन सैन। अनूभाव ये "सखन" के, सब बिधि सुख के ऐन" ॥

(५) अथ भक्ति के "शृङ्गार रस" में कुछ बचनः—

(श्लो०) यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधो मिह कर्कशेषु। ते नाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित् कूर्पादि भिर्भ्रमति धर्मव दायुषां नः॥

(श्री भागवते)

"हरिरिति हरिरिति जपति सकामम्" इत्यादि॥

(श्री जयदेव गीत गोविन्द)

(चौ०) प्राणनाथ! तुम विनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥ जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसेइ नाथ! पुरुष बिनु नारी। नाथ! सकल सुख साथ तुम्हारे। शरद विमल बिधु बदन निहारे। (दो०) प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान। तुम बिनु रविकुल कुमुद बिधु! सुरपुर नरक समान॥ (चौ०) छिनु छिनु पिय पद कमल विलोकी। रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी॥

"को न बिकी बिनु मोल सखी! लखि जानकीनाथ की सुन्दरताई" ॥

(गीत०) सखि, रघुनाथ रूप निहारु। &c. सखि रघुबीर 'मुख छवि देखु। &c. आली री राघो जी के रुचिर हिँडोलना झूलन जैए इत्यादि॥

(स०) सोहहिं स्वामिनिसीय सुसंग, "सहेली सबै अलबेली नवेली; गौरी, गिरा कहिये जिन आगे गवेली लगैं रति मानहुं चेली। सारी सबै जरतारी किनारिन की पहिरे तन रंग रँगेली; पीरी, हरी, रस-रंगमनी, कुसुमी, सित, ऊदी औ नीली रमेली॥ ऐसी "सखीं" चहुँ ओर लसैं, सिय मध्य कृपा रस सागर बोरी; दै सब को मुदपुंज बिलोकहिं मंजुल कंज बिलोचन कोरी। कोबरनै छवि सुन्दर राजकिशोरी की, जो तिहुँ लोक अँजोरी; जासुकठाक्ष विलास पिया चित को, रसरंगमनी, लिय चोरी॥

१ श्री कथा श्रवण	= उपटन
अभिमान	= मैल
२ श्रद्धा	= फुलेल
३ मनन	= सुनीर
४ दया	= अँगुछा द्वय
५ नवनि	= वसन
६ पन	= सोंधो
७ भगवन्नाम	= आभरण
८ हरि साधु सेवा	= कर्णफूल
९ मानसी	= सुनथ
१० सुसंग	= अंजन
११ चाह	= बीरी

(दो०) जेहि के हियसर सियकमल पावन विकसे आय। प्रियाशरण! रघुबर भ्रमर रहे तहां मँडराय॥
नहीं जप तप व्रत ज्ञान ते, नहिं विराग ते कोय। "उज्वल रस" अधिकार वर, "लली कृपा" ते होय॥
सिद्ध योगि देखे नहीं जो थल सुर समुदाय। सीय कृपा "अलिबेष" धरि सहजहिं देखहु आय॥ निज निज सेवा द्रव्य युत, "युवति" वृन्दसिय पास। रूप कला तिन महँ लिये बहु सुगन्ध सहुलास॥

(चौ०) सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस इतनेहि माहिं॥

"द्विभुज स्याम दशरथ कुंवर, रामऽरु जनक कुमारि। कारण कारज ते परे, इनहि कहत स्रुति चारि॥
सदा अवध में ध्यावहीं, रासादिक बहु रंग। बीच बीच मिथिला गवन, चहुँ कुँअरिन मिलि संग॥
रीति भाव स्थाइ पुनि, "प्रणय" प्रेम अरु नेह। अनूराग अस जानिये मनो एक दुइ देह॥
मन्द हँसनि दृग फेरनी, सो अनुभाव बखानु। कोकिल शब्द वसन्त ऋतु, सो उद्दीपन जानु॥
स्थाई प्रियतम रती नवनि प्रणय अति नेह। कर पंकज स्परस पर वारत तन मन गेह"॥

(चौ०) नाथ सकल सुख शरण तुम्हारे। शरद विमल विधु, वदन निहारे इत्यादि॥

(दोहा) प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम विनु रविकुलकुमुदविधु! सुरपुर नरक समान॥
"सी" कहते सुख ऊपजे, "ता" कहते तम नास।
तुलसी "सीता" जो कहै, राम न छाड़ैं पास॥

प्रियपाठक! श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी कृत "श्रीगीतावली," श्रीदेव स्वामी (काष्ठ जिह्वा जी) प्रणीत "शृङ्गारप्रदीप," श्रीजयदेव स्वामी कृत "गीत गोविन्द"; प्रधान कृत "रामहोली, रामकलेवा," श्रीरूप सखी जी की होली; श्रीनाभाजी, श्रीरसिक अली, श्रीतपस्वी राम जी, श्रीरामरसरङ्गमणि जी तथा श्रीरामचरणदास जी कृत "अष्टयाम मानसपूजा"; "श्रीअगस्त्य संहिता" इत्यादि और श्रीमद्भागवत (दशम), एवं श्रीकृपानिवास जी की पोथियां भी देखिये॥

कवित्त।

पंचरस सोई पंच रंग फूल थाके नीके, पीके पहिराइबे को रचिके बनाई है। बैजयंती दाम, भाववती अलि "नाभा" नाम लाई अभिराम श्याम मति ललचाई है॥ धारी उर प्यारी, किहूं करत न न्यारी, अहो! देखो गति न्यारी ढरि पायन को आई है। भक्ति छवि भार, ताते नमित "शृंगार" होत, होते वश लखै जोई याते जानि पाई है॥ ५॥

भक्तिसुधा स्वाद।

"शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार," ये जो भक्ति के पांचो रस, सोही पँचरँगे फूलों के विचित्र *थाके हैं; इन्ही की बैजयन्ती माला सप्रेम नीके रच रच के, प्रियतम को पहिराने के हेतु, श्रीनाभा नाम की अतिभाववती अलीजी सुन्दर मनोहर बनायलाई हैं; जिस को देख के, भक्तवत्सल भावग्राहक प्रेमप्रिय श्रीशार्ङ्गधर श्यामसुन्दर जी की भी मति ललचगई है; आपने इस मालाको उरमें धारण किया, यह विलक्षण अनूप रीति गति देखनेही योग्य है कि आप इस परमप्रिय माला को किसी क्षण गले से अलग नहीं करते हैं॥ भक्ति रस पुष्प थाकों की यह वैजयन्ती बनमाला है, इस कारण से यह श्री चरण कमल पर झुक के आ लगी है; अहा! भक्ति की गति क्या न्यारी होती है, "उज्वल रस" ("रसराज" अर्थात् "शृङ्गार" रस,) भक्ति की अपार छवि के भार से नमित, क्याही सुन्दर होता है; यह बात इससे जानने में आती है कि श्री भक्ति महारानी का जो दरशन पाता है सो अवश्य प्रभु के प्रेम के बश हो ही जाता है॥

(१) "सोह न बसन बिना बर नारी"।
(२) "नन्नि बसन, (पन सोंधो लै लगाइये)"
(३) "यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सकल सेवा बिधि गुनी॥ निज कर श्री

परिचर्य्या करई। रामचन्द्र आयसु अनुस-
रई"॥ इत्यादि ॥

(४) "पद सेवा श्रीलक्ष्मी, (आसन वर श्री शेष)"
इत्यादि, इत्यादि ॥

सतसंग प्रभाव वर्णन। कवित्त।

भक्ति तरु पौधा ताहि विघ्न डर छेरी हू कौ, बारि दै बिचार, बारिसींच्यो सतसंग सों। लाग्योई बढ़न, गोंदा चहुँ दिशि कढ़न, सो चढ़न अकाश, यश फैल्यो बहुरंग सों॥ संत उर आलवाल शोभित विशालछाया, जिये जीव जाल, ताप गये यों प्रसंग सों। देखौ बढ़-वारि, जाहि अजाहू की शंका हुती, ताहि पेड़ बांधे झूलें हाथी जीते जंग सों॥ ६॥

वार्त्तिक।

श्री हरिभक्ति रूप तरुवर की आदि अवस्था एक नवीन वृक्ष की सी समझिये कि जिस्को एक बकरी के बच्चे से भी विघ्न का भय रहा करता है, और सन्त वा भक्त के हृदय को थाला सरिस जानिये। इस पौधे की रक्षा चारों ओर विचार रूप घेरे * से जब की गई तथा सत्सङ्ग के जल से यह सींचा गया तब यह बढ़ने लगा; चारों ओर गोंदे (शाखा प्रशाखा) निकले फैले और वृक्ष आकाश की ओर चढ़ने बढ़ने लगा भगवद्भक्ति का सुयश अनेक प्रकार से लोक में

* मिट्टी ईंटों वा कांटों के घेरे को "बारी" वा "आर" जानिये॥

विख्यात हो गया। इस तरुवर की विस्तृत छाया कैसी सुशोभित हुई कि जिसके तले पहुँचने ही से महाताप गए; और नारिनरवृन्द वरन् जीव मात्र जी उठे अत्यन्त सुखी हुए। इस वृक्ष की उन्नति पर तनक चित्त की दृष्टि तो दीजिये कि जिसको प्रथमतः छेरी बकरी की भी महा शंका रहा करती थी वही अब आज (रामकृपा से) ऐसा सुदृढ़ हो गया कि ज्ञान वैराग्य यश महत्वादिक बड़े बड़े प्रबल हाथी भी इसमें बँधे हुए झूला करते हैं; सत्सङ्ग के प्रभाव को विचारियेगा॥

चौपाई। सत सङ्गति मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि, सब साधन फूला॥

श्रीनाभाजूका वर्णन। कवित्त।

जाको जो स्वरूप सो अनूप लै दिखाय दियो, कियो यों कवित्त पट मिहीं मध्य लाल है। गुण पै अपार साधु कहैं आंक चारिही में, अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है॥ सुनि संत सभा झूमि रही, अलि श्रेणी मानों, घूमि रही, कहैं यह कहा धौं रसाल है। सुने हे अगर अब जाने मैं अगर सही, चोवा भये नाभा, सो सुगंध भक्तमाल है॥ १॥

वार्त्तिक।

जिस सन्तका जैसा स्वरूप है, श्रीनाभा जी स्वामी ने

उसको अपने अनूठे काव्य में वैसाही अनूप दिखा दिया है और कविताई ऐसी की है कि जिस्का अर्थ ऐसा झलकता है कि जैसे बहुत झीने बस्त्र के बाहर से उसके भीतर का लाल मणि (रत्न) झलकता है ॥ सन्तों के अपार गुणों को श्रीनाभाजी ने थोड़ेही अक्षरों में यों कहा है, कि उन में अर्थ अनोखे विस्तृत भरे हैं, जैसे बड़े बड़े कबिवरों की चमत्कृत रीति होती ही है ॥ सन्तों की सभाएं इस भक्तमाल काव्य को सुन के भ्रमर वृन्दों की भांति मँड़राती तथा झूमती रहती हैं, और यह कहती हैं कि "यह कैसा आश्चर्य्य रस मय रसाल है" ॥ मैंने "अगर" जी का नाम सुना तो था परन्तु अब ठीक ठीक जान भी लिया कि आप वस्तुतः 'अगर' हैं, जिन से "नाभा" * रूप 'चोआ' हुए, कि जिन नाभा ("नाफ़ा") † का "भक्तमाल" ऐसा 'सुगन्ध' फैल रहा है ॥

☞ भागवतधर्माचरण के प्रसिद्ध तथां प्रधान आधार "भक्तमाल" की क्या बात है। इस आदरणीय ग्रन्थ का अनुवाद केवल महाराष्ट्री, बङ्गला, फारसी, उर्दू, आदि अनेक प्राकृत भाषाओं मात्र में ही नहीं. वरंच देववाणी (संस्कृत) में भी हो गया है ॥

* नाभाजी "नभोभूव" का अपभ्रंश है ॥ † नाफ़ा (कस्तूरी [illegible]) نافہ

यह तो ठीक ही है कि इस ग्रन्थ (भक्तमाल) में प्रायः सातसौ भक्तों के नाम हैं, सतयुग त्रेता द्वापर के अतिरिक्त कलियुग के ४७४०वें वर्ष तक के नाम हैं॥ अर्थात्–

हिन्दू महाराजाओं के ४२९६ वर्ष के, तथा
मुसल्मान् बादशाहों के ४४४ वर्ष के,
(सम्बत १६९६, सन १६३९ ईसवी,)
कलियुग के ४७४०वें वर्ष पर्य्यन्त के महात्मा के,
(विक्रमी सत्रहवीं शताब्दि तक के);
कि जिस समय को आज, * २६४ वर्ष हुए॥

गोस्वामी श्री ६ नाभा जी के "भक्तमाल" के अनुवाद और टिप्पणी तथा टीकाएं भी, अपनी अपनी चाल पर, अनेक हो चुकी हैं–

"थाके" शब्द का अर्थ।

एक एक रंग के पांच सात फूलों का समूह एकत्रित, ऐसे समूहों को "थाके" कहते हैं। जैसे गुलाबी वा लाल पुष्पों का एक थाका, ऐसे ही पीले, हरे, स्वेत, स्याम तुलसीदलों फूलों के विचित्र थाके॥ ऐसे पंचरंगे थाकाओं से मालाएं रची जाती हैं, यह प्रसिद्ध ही है॥

* कलियुगीय सम्बत्सर ५००४=विक्रमीय सम्वत १९६०=सन् १९०३ ईसवी॥

गिनती	सम्वत	भक्त नामावलियों के नाम	उनके कर्त्ताओं के नाम
१	१७६९,	भक्ति रस बोधिनी टीका	श्री प्रिया दास जी
२	१८००	भक्त उरवसी (अनुवाद)	लालचन्द्र दास
३	१८९८	(फ़ारसी)	मु० गुमानी लाल
४	१९११	भक्ति प्रदीप (२४ निष्ठा)	श्री तुलसीराम जी
५		भक्त कल्पद्रुम (२४ निष्ठा)	प्रतापसिंह जी
६	१८००	भ०मा० टिप्पनी (श्रीकाशी१९२३ लखनऊ १९५३, बम्बई १९५७ में छपी है)	निम्बार्क सम्प्रदायी वृन्दावन वासी वैष्णवदास
७	१९२१	रामरसिकावली (चौपाई)	राजा श्रीरघुराजसिंह
८	१९२५	रसिकभक्तमाला	श्रीयुगलप्रिया जी
९	१९३०	भक्तमाल	श्री हरिश्चन्द्र जी
१०	१९३४	"رموز مسرورہ"	श्रीतपस्वीराम जी सीतारामीय
११		भक्तनामावली	श्री ध्रुवदास
१२	१९५८	भक्तनामावली	श्रीराधाकृष्ण दास, "श्रीकाशी नागरीप्रचारिणी सभा"

इन में, भक्तों के निवास स्थान देश तो प्रायः वर्णित हैं, परन्तु उनके जन्मादि के काल की चरचा पाई नहीं जाती। हां, इस बात के अनुमान तथा अनुसन्धान की ओर इन चार महाशयों की दृष्टि तो अवश्य ही गई है (१) प्रेमीवर श्रीहरिश्चन्द्र जी (२) "प्रेमगंगतरंग"

"रमूज़े मिह्रो वफ़ा" और "वक़ाए देहली" * इत्यादिक के कर्त्ता श्रीतपस्वीराम जी सीतारामीय (३) श्रीराधाकृष्णदास जी (४) "दिमाडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर् अव हिन्दुस्तान" † के कर्त्ता डाक्टर् ग्रियर्सन् साहिब् ॥ तथापि, किसी के उनकी तारीखें मिलीं नहीं ॥ तो जिन वार्त्ताओं की टोह ऐसे २ ऐतिहासिक तत्त्व रसिक अनुसन्धान कारियों को न मिलीं, उन बातों में इस दीन का हस्तक्षेप भला कब फलदायक होना सम्भव ? (चौपाई) "जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं ।
कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥"

अतः उसको छोड़कर, इस दीन ने स्वमति अनुसार, केवल मूल तथा कवित के अर्थ मात्रही लिखने पर चित दिया । श्रीसीताराम कृपा से, "श्रीहनुमत यश तरंगिणि" ‡ "श्रीरामानन्दयशावली", इत्यादिक अनेक ग्रन्थों के कर्त्ता स्वामी श्री ६ रामरसरङ्गमणि जी भक्तमाली से, इस दीन को बड़ी भारी सहायता पहुंची है; कृपा का धन्यवाद ॥ सब सज्जनों से पुनः पुनः कृपा आसीस की इस दीन § की प्रार्थना है ॥

---

* رموز مہر و وفا و وقایع دهلی *

† The Modern Vernacular Literature of Hindustan by Dr. Grierson.

‡ "श्रीसीतारामशोभावली"

§ सीताराम शरण भगवान् प्रसाद सोभाग्यकला (रूपकला)

कबित्त ।

नाभाजू दयाल, अग्र आज्ञा ते, उताल, वंदि संत सिया लाल, रचे 'भक्त जस जाल है। मेटत कुचाल, भरे भूरि भाग भाल, तम नाशै, शोभा साल, प्रभा पूरे ज्यों मशाल है॥ निरखि निहाल, रस राममणि बाल, वेष वैष्णवी बिशाल, प्रीति पालनी निराल है। पढ़ै सर्व काल, सदा सुनै जो रसाल, होय काग ते मराल हाल, ऐसी "भक्तमाल" है॥ (श्रीरामरसरंगमणि)

यह बात विदित ही है कि "भक्तमाल" की शुद्ध प्रति आज कल ढूंढ़ निकालना भी कोई सहज ही सी वार्त्ता नहीं है॥

भक्तमाल स्वरूप वर्णन । कबित्त ।

बड़े भक्तिमान, निशिदिन गुण गान करैं, हरैं जग पाप, जाप हियो परिपूर है। जांनि सुखमानि हरि सन्त सनमान सचे, बचेऊ जगत रीति, प्रीति जाती मूर है। तऊ दुराराध्य, कोऊ कैसे कै अराधि सकै, समझो न जात, मन कंप भयो चूर है। शोभित तिलक भाल, माल उर राजै, ऐपै बिना भक्त माल भक्ति रूप अति दूर है॥ ८॥

वार्त्तिक ।

चाहै कोई कैसेही बड़े भक्तिमान हों, रात दिन

हरि गुण गाया करते हों, संसार के पापों को हरते भी हों, भगवन्नाम जपा करते भी हों, उनका हृदय सद्गुणों तथा भगवद्ध्यान से भरा भी हो, ज्ञानमान भीं हों, (तनु कम्प और हिय चूर्ण भी हों,) श्री हरि तथा सन्तों के सन्मान में भी सांचे हों, और उसी में सुख मानते भी हों, रीति से नाम जपते भी हों; सांसारिक प्रपंच से बचे भी हों, प्रेम को ही जड़ वा सार जानते हों, ललाट में तिलक और उर में माला भी सुशोभित हों; यह सब ठीक है सब कुछ हो, तथापि भक्ति की आराधना कठिन ही है; ओह! कोई किस प्रकार से आराधना कर सकता है? भक्ति की विलक्षण सूक्ष्मगति समझ में नहीं आती, मन कांप उठता है, हृदय चूर चूर हो जाता है। सारांश यह कि "श्री भक्तमाल जी" को पढ़े समझे और मनन किये बिना, श्री भक्तिमहारानी की आराधना और उनके स्वरूप का जानना अपताव दूर तथा असम्भव है॥

इस कवित्त में यह शंका है कि "जो जो श्री भक्ति के अंग इस में कहे हैं, तिस से पृथक् भी क्या और भी कोई भक्ति का रूप है?" समाधानः— नहीं परन्तु इन्हीं अंगों की निष्ठा परा काष्ठा रूप भक्तमाल में भक्तों ने आचरण करिके दिखाए हैं, कि जिन्हके श्रवणमात्र से ही, इन अंगों संपन्न जन भी, निज भक्ति का अभिमान त्यागि के निराभिमान परा-काष्ठा भक्ति पद की आशा करते हैं॥ (उदाहरण) यथा, बड़े भक्तिमान श्री पीपा जी ने चीधर भक्त की भक्ति को देखि निज भक्ति को लघु माना॥ 'गुन गान;' जैसे नृत्यकनारायणदास कि शरीर ही त्याग दिया॥ 'नाम जाप' अंतरनिष्ट राजा का कि, तनही त्याग दिया॥

'श्री हरिसन्मान सेवा' जैसे मामा भानजे की कि, सरावगी के शिष्य होके कहा कि पावैं प्रभु सुख हम नरक हूं गए तो कहा॥ 'सन्त सनमान' जैसे सदाव्रतीवणिक जी की कि वेष धारी ने बेटावध किया तब बेटी विवाहिके प्रसन्न किया॥ इत्यादिक उदाहरण श्री भक्तमाल में देख लीजिए। विस्तार के भय से बहुत नहीं लिखे॥

"श्रीभक्तमाल" क्या है? उन महानुभाओं का जीवन चरित्र कि जिनको हमारे करुणाकर प्रभु की दयालुता विशेष अपने छविसमुद्र में मग्न कर चुकी है। उनके श्रवण मनन निदिध्यासन बिन, उस रस में किसी का प्रवेश कैसे सम्भव है? क्रिया का यथार्थ स्वरूप कर्त्ताओंही के आचारण जान्ने से पूर्णतः तथा शीघ्रतर अन्तःकरण में श्रवणादि द्वारा पहुँचकर गुणकारक और सुखप्रद होता है। श्री भक्तमाल के अपूर्व अधिकार की विलक्षणता चित्त पर कैसी होती है, इसका अनुभव श्रीभक्तमाल के पढ़ने सुन्नेवालों ही को होता है॥

अथ मूल मंगलाचरण॥ दोहा॥

भक्त, भक्ति, भगवंत, गुरु, चतुर नाम बपु एक। इन के पद बंदन किये, नाशैं (बिनशैं) विघ्न अनेक॥ १॥

वार्त्तिक।

"श्रीभगवद्भक्त" "श्रीभगवद्भक्ति" "श्रीभगवत्" और "श्रीगुरु", इनके नाम ही मात्र तो चार हैं, परन्तु वास्तविक स्वरूप एक ही जानिये; इनमें भेद कुछ भी नहीं।

विश्वासपूर्वक ऐसा समझ रखिये कि इनके पद-सरोजकी वन्दना समस्त विघ्नों को निःशेष नाश करती

है, चाहे वे विघ्न हृदय के भीतर के हों; वा बाहर के ही हों॥

आठवें कवित्त तक तो श्रीप्रिया दास जी की ही निज भूमिका, मंगलाचरण, और उपक्रमणिका हुई। हां अब आगे, नवें कवित्त से, उनकी "टीका" प्रारम्भ होती है।

टीका॥ कवित्त॥

हरि गुरु दासनि सों सांचो सोई भक्त सही, गही एक टेक, फेरि उरते न टरी है। भक्ति रस रूप को स्वरूप यहै छवि सार चारु हरि नाम लेत अँसुवन झरी है॥ वही भगवंत संत प्रीति को विचार करै, धरै दूरि ईशता हू, पांडुन सो करी है। गुरु गुरुताई की सचाई लै दिखाई जहां गाई श्री पैहारी जू की रीति रंग भरी है॥ ९॥

वार्त्तिक।

(१) "भक्त" उन को समझिये सही कि जिन को "हरि" (भगवत) चरणारविन्द में तथा श्री "गुरु" पद कंज में और "हरिदासों" (भागवतों) के पदपंकज में 'सच्चा' प्रेम हो; तथा "श्री हरि, श्री गुरु और श्री हरिगुरुदासों" के प्रति जिन का सत्य (निष्छल निष्कपट) बरताव होवे; और जो श्रीकृपा से अपनी निज गृहीत निष्ठा के टेक में सदैव अचल रहैं॥ भक्तिमान जन भक्त

कहे जाते हैं अर्थात् जिन भाग्यभाजनों के हृदय कमल में श्री भक्ति महारानी विराजती हैं तिन्ह सज्जनों को भक्त कहते हैं ॥ (श्लोक) वैष्णवो मम देहस्तु तस्मात्पूज्यो महामुने । अन्ययत्नं परित्यज्य वैष्णवान् भज सुव्रत ॥

(२) "भक्ति" जो रसरूपा है उस्का सुन्दर छवि सार स्वरूप संक्षेपतः यह पहिचान लीजे कि श्री सीताराम नाम उच्चारण करने के साथ ही आंखें में से प्रेमाश्रु के बिन्दु टपकने लगें वरंच आंसू की झड़ी बरसने लगे ॥

"भक्ति" की कुछ व्याख्या पृष्ठ ७ से पृष्ठ ३४ पर्य्यन्त लिख आए हैं । "भक्त" के भाव का नाम "भक्ति" है अर्थात् जिस अनूप सम्पत्ति के भाजन को "भक्त" कहते हैं उस अविरल अमल पवित्र सर्वोत्तमोत्तम फलों के रस का नाम "भक्ति" जानिये ॥

(३) "भगवत" तो सन्तों और भक्तों की प्रीतिही को विचार करता है; प्रेम के आगे अपनी ईशता (ईश्वरत्व) को न्यारे ही छोड़ देता है; जैसे कि गृद्ध, निषाद, शवरी, पाण्डवों इत्यादिकन के साथ। ऐसा भगवत, सो उस्की इस भक्तवत्सलता की जय ॥

(४) ऐसे व्यापक, सच्चिदानन्द, परब्रह्म, सुखराशि, शार्ङ्गधर, शोभाधाम, परमसमर्थ, "भगवंत" श्रीजानकीवल्लभजी के पद पंकज की भक्ति जिस्के उपदेश तथा

कृपा द्वारा भक्तों को प्राप्त होती है, उसको श्री "गुरु" कहते हैं। गुरुताई की रीति तथा सचाई को श्रीकृष्णदास पैहारी (पयोहारी) जी महाराज के रङ्ग भरे चरित्र में सुना समझना चाहिये॥ कुछ न लेना और पूरा २ कृतार्थ कर देना॥

(१) प्रीति जिसको होती है (भक्त); (२) तथा प्रीति (भक्ति); (३) और जिसकी प्रीति होती है (भगवन्त) (४) एवं जिसके द्वारा प्रीति होती है और प्रियतम मिलता है, जो कि भगवत प्रेम के ही निमित्त पूजा जाता है, सो (गुरू); ये चारों के चारों ही केवल कहने मात्र को ही चार हैं, नहीं तो ध्रुव करके इन्हें वस्तुतः एक ही जानिये॥

जैसे यदि किसी को अपनी आंखें दर्पण में देखनी हो, तो उस समय विचारिये कि करता वा देखनेवाली तो आंखें ही हैं; तथा देखना आंखों ही की क्रिया है; और जिसको (कर्म) आंखें देखती हैं सो भी अपनी आंखे ही हैं; एवं जो आप के देखने के करण स्वरूप हैं नाम जिनसे आप देखते हैं वे भी आंखेंही हैं, और फिर दर्पण बना भी है केवल आंखों ही के लिये; अर्थात् कर्त्ता कर्म करण सम्प्रदान ये सब कारक आखें ही हैं। वा सब एक ही तत्त्व हैं। उनमें भेद वा भिन्नता कहां है? ऐसे हीं भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु, ये चारों अभेद हैं॥ भगवत की ही विचित्रता हैं। चारो नामों से भगवत ही बन्दनीय है वही एक नामी है॥

चारो की एकता का तात्पर्य्य यह कि श्रीभगवत हीं जीवों के कल्याण के निमित्त अपनी कृपा से चार रूप हुए हैं, क्योंकि भक्तों के अन्तर्यामी तथा उरप्रेरक आप हीं हैं; उपाय रूपा भक्ति भी आपही की साक्षात कृपा शक्ति है; हितोपदेशक इष्टमन्त्र गर्भित श्री गुरु तो भगवद्रूप प्रसिद्ध ही हैं। इस प्रकार से तत्त्वतः चारो एक हैं ॥

॥ दोहा ॥

मंगल आदि विचारि रह, बस्तु न और अनूप। हरिजन को यश गावते, हरिजन मंगलरूप ॥ २ ॥

सब सन्तन निर्णय कियो, *श्रुति पुराण इतिहास। भजिबे को दोई सुघर, कै हरि, कै हरिदास ॥ ३ ॥

वार्त्तिक।

मंगलाचरणों तथा मंगल वस्तुओं में विचारने से भगवत भक्तों का गुण वर्णन ही अनूप जँचता है, इसके सरीखा मंगल मूल और कुछ भी नहीं ठहरता। भग-

* प्रकट हो कि "अशुद्ध" प्रतियों में ऐसा पाठ है कि सब सन्तनमिली निर्णय कियो मथि श्रुति पुराण इतिहास ॥ इत्यादि ॥

वत तथा महात्माओं के सुयश को गाते गातेही, भगवत के जन मंगलमय हो जाया करते हैं॥

सब वेदों पुराणों इतिहासों ने तथा सब सन्तोंने यह बात पक्की ठहराय रक्खी है कि भजे जाने के योग्य दो ही हैं (१) भगवान् तथा (२) भगवान् के साधु भक्त; सो इन दोनों ही की सेवा वा भजन, उत्तम ठीक और सुन्दर है॥

॥ दोहा ॥

अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तन को यश गाउ।
भवसागर के तरनको, नाहिन औरउपाउ४।

वार्त्तिक।

स्वामी श्री ६ अग्रदेव महाराज जी ने आज्ञा दी कि भागवतों के सुयश वर्णन कर; भवसिन्धु से पार होने के अर्थ अमोघ महानौका दूसरा कोई नहीं है॥

आज्ञा समय की टीका॥ कवित्त॥

"मानसी स्वरूप" में लगे हैं अग्रदास जू वै, करत बयार नाभा मधुर सँभार सों। चढ्यो हो जहाज पै जु शिष्य एक, आपदा में कस्यो ध्यान, खिच्यो मन, छुट्यो रूपसार सों॥ कहत समर्थ "गयो बोहित बहुत दूरि आवो छवि पूरि, फिरि ढरो ताही ढार सों"॥ लोचन उघारिकै निहारि, कह्यो "बोल्यो कौन?" "वही जौन पाल्यो सीथ दै दै सुकुँवार सों"॥ १०॥

वार्त्तिक।

एक समय स्वामी श्री ६ अग्रदास महाराज जी मानसी भावना में मग्न थे, और श्रीनाभाजी महाराज आप को प्रेम से धीरे धीरे पंखा झल रहे थे। उसी समय आप के एक शिष्य ने, कि जो सागर (समुद्र) में एक जहाज़ पर चढ़ा था, जहाज़ के रुक जाने से आर्त्तवश स्वामी श्री ६ अग्रदेव महाराजजी का ध्यान किया। एक तो स्मरण, दूसरे दीनता से, फिर क्या था, उक्त स्वामी जी कृपालु के मन को सार स्वरूप की सेवा से छुड़ा के अपनी ओर आकर्षण कर ही तो लिया। समर्थ श्री नाभाजी अपने स्वामी के अनुपम रहस्य सेवा का यों विघ्न सह न सके; कृपापूर्वक उसी पंखे के वायुबल से जहाज़ को उस आपदा से छुड़ा कर, विनय किया कि "प्रभो! वह बोहित (जहाज़) तो आप की कृपा ही से आपदा से बच कर बहुत दूर निकल गया; अब आप अपने चित्त को उधर से लौटाय के शान्ति पूर्वक स्वकार्य्य में तत्पर करके पुनः उसी अनुपम छवि में लगाइये"। इस वर्त्ता के सुन्तेही नेत्र उघार उनकी ओर निहार आपने पूछा कि "कौन बोला?" श्रीनाभाजी ने हाथ जोड़ के प्रार्थना की कि "नाथ! वही शरणागत बालक, कि जिस्को सीथ प्रसाद देदे के आपने कृपापूर्वक पाला है॥"

टीका। कवित।

अचरज दयो नयो यहां लौं प्रवेश भयो, मन सुख छयो, जान्यो संतन प्रभाव को। आज्ञा तब दई, "यह भई तोपै साधु कृपा, उनहीं कौ रूप गुण कहो हिय भाव को"॥ बोल्यो करजोरि, "याको पावत न ओर छोर, गाऊं राम कृष्ण नहीं पाऊं भक्ति दाव को"। कही समुझाइ, "वोई हृदय आइ कहैं सब, जिन लै दिखाइ दई सागर में नाव को" ॥ ११ ॥

वार्त्तिक।

इतना सुन्तेही आप नवीन आश्चर्य्य में आकर विचार ने लगे कि इसकी यहां तक पहुंच हुई! तथा मन में अत्यन्त आनन्द छाय गया, और जाना कि यह सन्तों के प्रसादी और चरणामृत का प्रभाव है। तब आपने इन्हें आज्ञा दी कि "वत्स! यह तुझ पर साधुओं की अलभ्यं कृपा हुई; अतः अब तू सन्तोंही के गुण स्वरूप तथा हृदय के भाव को वर्णन कर"। (भवसागर के तरने का यही उपाय है।)

इनने हाथ जोड़ के निवेदन किया कि "स्वामी! श्री रामकृष्ण चरित्र गा सकूं तो गा सकूं, परन्तु भक्तों के अपार रहस्य चरित्रों का आदि अन्त पाना तो मुझ को असम्भव ही है"। आपने समझाया कि "पुत्र! जिनने तुम्हें समुद्र में जहाज़ को दिखा दियो, वेही

तुम्हारे हृदय में प्रवेश करके अपने अलौकिक रहस्यों को कहेंगे। सो, तुम अब भक्त यश कह ही चलो॥"

ऐसे वरदानात्मक वचनवर सुनके श्रीकृपा से श्रीनाभाजी महाराज आनन्द पूर्वक उद्यत होही तो गए, और "श्रीभक्तमाल" रचही तो दिया॥

☞ श्रीभक्तमाल जी में १९५ छप्पय (षटपदी) हैं; आदि में चार दोहे हैं; एक कुण्डलिया तथा एक दोहा मध्य में; और अन्त में बारह दोहे हैं; सब मिलके २१३ (दो सौ तेरह) छन्द हैं॥ यही "मूल भक्तमाल" है, जो (यही मूल), इस ग्रन्थ में 'बड़े अक्षरों में' छपा है॥ और, श्रीप्रियादास जी की "भक्तिरस बोधिनी" टीका (उक्त भक्तमाल की), ६२९ कवित्तों में है। इन्हीं आठ सौ बतालीस (२१३+६२९=८४२) छन्दों का भावार्थ, यथा मति, सन्तों की कृपा से लिखना, इस दीन का उद्देश्य है॥

श्रीनाभाजी की आदि अवस्था वर्णन। कवित्त।

हनूमान बंश ही में जनम प्रशंस जाको भयो दृगहीन सो नवीन बात धारिये। उमरि वरष पांच, मानि कै अकाल आंच, माता वन छोड़ि गई विपति विचारिये॥ कील्ह औ अगर ताहि डगर दरश-दियो लियो यों अनाथ जानि, पूछी, सो उचारिये। बड़े सिद्ध जल लै कमण्डलु सों सींचे नैंन, चैंन भयो खुले चख, जोरी को निहारिये॥ १२॥

वार्त्तिक।

स्वामी श्री नाभाजी महाराज के जन्म, और प्रथम अवस्था की दशा, इस प्रकार है कि परम प्रशंसनीय श्रीहनुमान वंश में अवतार लिया॥

सो हनुमान वंश का निर्णय मुन्शी श्रीतुलसी राम जी और उनके अनुग श्रीभक्तकल्पद्रुम के कर्त्ता श्री प्रत्तापसिंह जी ने, इस प्रकार किया है कि दक्षिण में तैलङ्ग देश गोदावरी के समीप श्रीरामभद्राचल केपास "श्रीरामदास" नाम के एक महाराष्ट्र ब्रह्मण श्रीहनुमान् जी के अंशावतार हुए, (उनके छोटी सी पूंछ भी थी) वे बड़े प्रसिद्ध श्रीरामोपासक परम भक्त सानुराग सिद्ध थे बहुतों को श्रीसीताराम भक्त भवविरक्त श्री चरणानुरक्त करके श्री सीताराम धाम को प्राप्तहुए। इस प्रकार श्रीहनुमान अवतार होने से वह हनुमान वंश करके विख्यात है, अबतक उसवंश के लोग गानविद्या के अधिकारी होते हैं राजा लोगों के यहां नौकरी गानेपर करते हैं ऐसा उन्होंने लिखा है॥

और इसी भक्तमाल को, दोहा चौपाई में रचनेवाले राजा श्रीरघुराजसिंह जी ने ऐसा लिखाहै कि "सो शिशु लाङ्गूली द्विजकेरो" अर्थात् उन्होंने हनुमान वंश का "लाङ्गूली" ब्राह्मण अर्थ किया है॥

और, कोई २ तो स्वामी श्रीनाभाजी का जन्म डोम

वंश में भी कहते हैं, परन्तु पश्चिम देश में "डोम" किस को कहते हैं यह न जाननेवाले लोग इस देश में डोम भंगी को नामान्तर समझ के "भंगी" भी कह बैठते हैं सो भंगी कहना महा अनुचित अविचार है क्योंकि पश्चिम माड़वार आदिक देशों में, 'डोम, कलावँत, ढाढ़ी, भाट , कथक,' इन गानविद्या के उपजीवीयों की तुल्य जाति (ज्ञाति) और प्रतिष्ठा है। इसका प्रमाण (१११वें छप्पय में) श्रीमूल कारने "लाखा" भक्त को बानर अर्थात् बानरवंशी लिखा और (४२६ वें कवित्त में) भक्त-माल के टीका कारने "लाखा नाम भक्त ताको बानरो बखान कियो कहैं जग डोम जासो मेरो शिरमोर है" ऐसा लिख के आगे इन के गृह में सन्तों का जाना और रोटी प्रसाद का खाना भी लिखा है सो देख लीजे॥ लाखा भक्त के इहां सन्तों का प्रसाद रोटी पाना अन्यथा असंभव था॥ अस्तु, इहां तो दोनों प्रकार से उत्तमता है श्रीनाभा स्वामी तो श्री सीताराम जी के अनन्य विशुद्ध जगत पूज्य दास हैं न ब्राह्मण हैं न डोम इन अच्युतगोत्र की देह तो जात्याभिमान से रहित है! इत्यलम्॥

और श्रीनाभाजी के अवतार की कथा इस प्रकार भी सन्तों से सुनी है कि जब ब्रह्माजी ने वत्स बालकों को हरण किया तब श्रीकृष्ण कृपालु जी ने कहा "ब्रह्मा

जी आप विमोह दृष्टि से हमारे प्रिय वत्स बालकों का हरण किया तिस हेतु से कलिकाल में लोचनहीन जन्म लोगे" तब श्रीब्रह्माजी ने स्तुति की और श्रीभगवान् ने प्रसन्न होके वर दिया कि "पांच वर्ष तक अंधे रहोगे तदुपरि बाहिर भीतर दोनों प्रकार के दिव्य नेत्र खुलेंगे और परम यश को प्राप्त होगे"। सोई श्री ब्रह्मा जीके अंश से अवतार लिया ॥

प्रशंसनीय हनुमान बंश में, हरि इच्छा से आपने अन्धेही जन्म लिया, और "नवीन बात," सो यही कि नेत्रों के चिन्ह तक न थे, तिन्ह को भी महात्माओं की कृपा से दिव्य लोचन मिले। आप पांचबर्ष के हुए तब देश में अति दुकाल पड़ा। पिता का भी शरीर छूट गया। माता आप को लेके और देश को चलीं; परन्तु भूखों मरने लगीं, लेके न चल सकीं इसी बिपत्ति के बश बनही में छोड़कर चली गईं। वह दीनता, और भगवत की यह दीनदयालुता बिचारनेही योग्य है कि स्वामी श्री कील्ह देव जी तथा स्वामी श्री अग्रदेव जी श्रीहरि कृपा से उसी ओर जा निकले; अनाथ बालक को देख आपने पूछा कि "बालक! तू कौन है? और अकेला क्यों है? कोई और भी तेरा संगी सहायक है? तेरे माता पिता कौन हैं?"

सो उसी अवस्था में, (होनेहार बिरवे के चिकने चिकने पात) आपने उत्तर कुछ विलक्षण सा दिया, कि "महाराज! अब तक तो यह दीन अपने को असहाय ही समझे था परन्तु आप का कृपा पूर्वक पूछना ही मुझे सुधि दिलाता है कि मेरा और तो माता पिता संगी सहायक कोई नहीं है, पर जो सब जगत का माता पिता साथी और सहायक है, सोई अनाथ नाथ मेरा भी संगी सहायक और माता पिता है॥"

दोनों महात्मा सिद्ध तो थे ही, बड़े भाई श्री कील्ह देव जी ने अपने कमण्डल से कृपा रूपी जल के छींटे जों ही उनकी आंखों पर दिये, उसी छन उनकी आंखें खुलही तो गईं। दोनों महानुभावों की जोड़ी का दरशन पाकर उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आए॥

अब इस बिषय में (अर्थात श्री नाभा जी के जन्म जाति तथा नाम की वार्त्ता) कुछ और भी निवेदन की जाती है—

स्वामी श्री नाभा जी का नाम "नभभूज" है; आप अयोनिज पुरुष हैं; आप की जाति तो कोई नहीं; आप श्री हनुमत स्वेद से हैं, अतएव हनुमानबंशी प्रसिद्ध।

"श्रीसूर्य्यभगवान् से विद्यापढ़ने के अनन्तर जिस समय श्री अंजनीनन्दन पवनतनय श्री हनुमान जी श्री शिव जी के समीप योग सीख रहे थे,

उस समय बिचार के परिश्रम से जो स्वेद (पसीना) श्री मारुति भगवान् के अङ्ग से निकला, उसको भक्तिरत्न के कोषाध्यक्ष त्रिकालज्ञ जगद्गुरु श्री शिव जी ने एक पात्र में रखलिया। कालान्तर में श्री भगवद्भक्ति के बिवर्द्धन के निमित्त उसी को नभसे भू में निक्षेप किया; इसी से इनका नाम "नभभूज" हुआ कि जो "नाभा जी" के नाम से प्रसिद्ध है। हनुमान बंसी इसी से कह लाए।" अयोनिज पुरुष की जाति कोई नहीं॥ वह पसीना (स्वेद) उस समय का था कि जब आप नेत्रों को बन्द किए हुए योग की पराकाष्ठा दशा (समाधि) में थे; अतएव श्री नाभा जी भी वाह्य नयनों से हीन (परन्तु अन्तःकरण की दिव्य दृष्टि से अनुपम रहस्य के देखने वाले ही) हुए॥"

टीका। कबित्त।

पायँ परि आंसू आये, कृपा करि संग लाये, कील्ह आज्ञा पाइ, मंत्र अगर सुनायो है। "गलते" प्रगट साधु सेवा सो बिराजमान जानि अनुमान, ताही टहल लगायो है॥ चरण प्रछालि संत सीथ सों अनंत प्रीति, जानी रस रीति, ताते हृदय रंग छायो है। भई बढ़वारि ताको पावै कौन पारवार, जैसो भक्ति रूप सो अनूप गिरा गायो है॥ १३॥

वार्त्तिक तिलक।

बड़ी श्रधा से उनने अपना सीस दोनों महात्माओं के पदकंज पर रख दिया। कृपापूर्वक वे "गलता" स्थान में (गालव मुनि के आश्रम में कि जो जयपुर के पास है,) लाए गए॥

स्वामी श्री कील्हदेवजी की आज्ञा से, स्वामी श्री अग्रदेवजी ने नारायणदास नाम रख कर इनको श्री राम मन्त्र उपदेश किया। उक्त गादी की साधु सेवा तो प्रसिद्ध है ही, श्री नाभा जी (नारायणदास जी) को यह टहल सौंपा गया कि "सन्तों के चरण धोया करें, तथा उच्छिष्ट पत्तल उठाया करें" "वही सन्त प्रसादी पाया करें और सन्त चरणामृत पिया करें"॥

महात्माओं की आज्ञानुसार कुछ काल पर्य्यन्त ऐसाही करने से श्री राम कृपा से इनको सन्तों के चरणामृत तथा सीथ प्रसाद में अत्यन्त प्रीति हो गई; और उसका स्वाद विशेष भी इनने जाना। एवं इनका अन्तःकरण भागवतों तथा भगवत के विलक्षण प्रेमरङ्ग से रङ्गगया, और ऐसे अनुपम विद्युत के चमत्कृत प्रकाश से सुशोभित हुआ कि जिसकी अलौकिक किंचित झलक की अपूर्व अवस्था से (कवित्त १० पृष्ट ४८) ज्ञान वैराग रूपी नेत्रों को चकचौंध सी हो जाती है॥

जैसी अपार बढ़वारी (बड़ाई) इनकी हुई, उस

का वार पार कौन पा सकता है? देखिये, श्रीभक्ति जी का जैसा विलक्षण स्वरूप है उसको अपनी अनूप बाणी से श्री भक्तमाल में आपने (श्रीनाभा स्वामीजी ने) कैसा गाया है॥

श्री भक्तमालकार स्वामी श्री नाभाजी प्रथमतः "दोहाओं" में ही मङ्गलाचरण करके, अब "षटपदी (छप्पय) छन्द" के आरम्भ में पहिले, चौबीसौं अवतारों का जयकारात्मक मङ्गलाचरण करते हैं।

(मूल) छप्पै।

जय जय मीन[१], बराह[२], कमठ[३], नर-हरि[४], बलि वावन[५]। परशुराम[६], रघुबीर[७], कृष्ण[८], कीरतिजगपावन॥ बुद्ध[९], क-लक्की[१०], व्यास[११], पृथू[१२], हरि[१३], हंस[१४], मन्वन्तर[१५]। यज्ञ[१६], ऋषभ[१७], हयग्रीव[१८] ध्रुवबरदैन[१९], धन्वन्तर[२०]॥ बद्रीपति[२१], दत्त[२२], कपिलदेव[२३], सनकादिक[२४], क-रुणा करो। चौबीस[२४] रूप लीला रुचिर, श्री अग्रदास! उर पद धरो॥ १॥ (५)

वार्त्तिक।

जय जय जय, हे श्री मच्छ रूप भगवान! आप की जय; हे श्री शूकर रूप भगवान! आप की

जय; हे श्री कच्छप रूप भगवान! आप की जय; हे श्री प्रह्लादपति नरसिंह जी! आप की जय; हे बलियुत श्री बामन जी! आप की जय; हे श्री परशु राम! आप की जय; हे प्रभो श्रीरामचन्द्र रघुबंश-मणि! आप की जय; हे यदुपति श्रीकृष्णचन्द्र! आप की जय; हे बुद्धावतार! आप की जय; हे श्री कल्कि भगवान! आप की जय; हे श्री वेदव्यास जी! आपकी जय; हे श्री पृथु जी! आप की जय; हे गजेन्द्र रक्षक श्री हरि! आप की जय; हे श्रीहंस रूप भगवान! आप की जय; हे चतुर्दश मनु अवतार! आप की जय; हे श्री स्वयंभू मनु के रक्षक श्री यज्ञ भगवान! आप की जय; हे श्री ऋषभ भगवान! आप की जय; हे श्री हयग्रीव रूप भगवान! आप की जय; हे श्री ध्रुवजी के बर दाताजी! आप की जय; हे श्री धन्वन्तर जी! आप की जय; हे बद्रीपति श्री नर नारायण जी! आप की जय; हे श्री दत्तात्रेय जी! आप की जय; हे श्री कपिलदेव जी! आपकी जय; हे श्रीसनक श्रीसनन्दन श्रीसनातन श्रीसनत्कुमार जी! आप की जय जय; हे भगवन्! आप के चौबीस रूपों की रुचिर लीलाओं की कीर्त्ति जगत को पावन करने हारी है; आप मेरे ऊपर कृपा कीजे, अर्थात् अपने निज भक्तन सहित रुचिर लीला मेरे हृदय में प्रकाश कीजिये। और हे गुरु

देव श्री अग्रदास जी। इन चौबीस अवतारों के साथ आप भी अपना २ पदसरोज मेरे हृदय में रखिये॥

गिनती	अवतारों के नाम	युग	मास*	पक्ष*	तिथि*	समय	जिस देश में अवतीर्ण हुए उसका नाम
१	मत्स्य	कृत	अ०	शु०	११	प्रात	पुष्पभद्रा
२	कच्छप	कृत	भा०	कृ०	३	प्रात	समुद्र
३	शूकर	कृत	भा०	शु०	५	मध्यान्ह	हरिद्वार
४	नृसिंह	कृत	वै०	शु०	१४	सायान्ह	पंजाब मुलतान
५	वामन	त्रेता	भा०	शु०	१२	मध्यान्ह	प्रयाग जी
६	परशुराम	त्रेता	वै०	शु०	३	मध्यान्ह	यमुनिया ग्राम
७	श्रीरघुपति	त्रेता	चै०	शु०	९	मध्यान्ह	श्रीअयोध्याजी
८	श्रीकृष्ण	द्वापर	भा०	कृ०	८	अर्द्ध रात्रि	मथुरा जी
९	बुद्ध	द्वापर	पू०	शु०	७	प्रात	गया (कीकट)
१०	कल्कि	कलि	मा०	शु०	३		सम्बलग्राम मुरादाबाद

☞ ये प्रसिद्ध "दश" अवतार हैं।

*कल्पभेद से तिथियों में भी कहीं कहीं कभी कभी भेद पाया जाता है॥

गिनती	अवतारों के नाम	युग	देस	
११	व्यास	द्वापर		
१२	पृथु	कृत	श्री अयोध्या	
१३	हरि	कृत	त्रिकूटाचल	
१४	हंस	कृत	ब्रह्मलोक	
१५	मन्वन्तर	कृत	बिठूर	चौदह
१६	यज्ञ (उरुकुरुम)	कृत	बद्री	
१७	ध्रुववरदेन	कृत	बिठूर	
१८	हयग्रीव	कृत	कामरूप	
१९	ऋषभदेव	कृत	श्री अयोध्या	
२०	धन्वन्तर	कृत	समुद्र	
२१	नरनारायण	कृत	बद्रिकाश्रम	
२२	दत्तात्रेय	कृत	चित्रकूट	
२३	कपिलदेव	कृत	बिन्दुसरकेसमीप	
२४	सनकादि	कृत	ब्रह्मलोक	चार

टीका (कवित्त)

जिते अवतार, सुखसागर न पारावार, करै विसतार लीला जीवन उधार कों। जाही रूप मांझ मन लागै जाको, पागै ताही; जागै हिय भाव वही, पावै कौन

पार कौं ॥ सब ही हैं नित्त, ध्यान करत प्रकाशैं चित्त, जैसे रंक पावै वित्त, जोपै जानै सार कौं। केशनि कुटिलताई ऐसे मीन सुखदाई, अगर सुरीति भाई, बसौ उर हार कौं ॥ १४ ॥

वार्त्तिक ॥

भगवतके जितने अवतार हैं, वे सबही सुखके समुद्र हैं, जिनका वारपार (और छोर) कौन पासकता है; प्रत्येक की लीला का विस्तार पसार, जीवों के ही उद्धार के निमित्त है। जिस भक्त का, जिस अवतार के रूप नाम लीला धाम में मन लगै, और उसमें वह रँगै पगै, उसके हृदय में वही भाव ऐसा जाग उठता है (प्रकाश मान होता है) कि कहांतक उसकी प्रशंसा कीजाय, उसका अन्त नहीं। सबही अवतार नित्य हैं, सबही ध्यान करने से चित्त को प्रकाश कारक; और सब ही ऐसे सुखद हैं कि जैसे दरिद्री को धन का मिलना सुख देता है। हां, इतनी बात तो अवश्य है कि यदि सारांश तत्व का ज्ञान होवे, तब सुख की प्राप्ती होती है ॥

जिस प्रकार से 'टेढ़ापन' रूपी दोष भी बालों (केशों) के सम्बन्ध में सुखद गुणही होता है, वैसेही मीन बाराह आदि तिर्यक शरीर भी भगवत की प्रभुता के सम्बन्ध से अति सुखदाई ही हैं ॥

"सबही अवतारों को भाव पूर्व्वक पूर्ण मानना," श्री अग्रदेव स्वामी जी की ऐसी जो मन भावती रीति सो मेरे हृदय में मनोहर हार के सरिस बसै॥

प्रेम एक ऐसा अनुपम और अनोखा पदार्थ है कि वह जात पांत का कदापि विचार न करके तड़ितवत जिसपर पड़ता है लोक परलोक के झगड़ों से उसको छुड़ाही के छोड़ता है। जोकि इस ग्रन्थ में जगदोद्धारक निषाद शुपचादि महानुभावों के विमल पवित्र चरित, कि जिनको देख सुनकर कर्म काण्ड के बड़े २ अभिमानी नाक सकोड़ते और दातों तले उङ्गली दबाते चले आए हैं, वर्णन किये हैं; इसीसे ग्रन्थ कर्त्ताने भूभार उतारने वाले और भक्तों के सुख देने हारे भगवत के भी शूकरादि विलक्षण स्वरूपों की वन्दना रूपी मंगलाचरण पहिले किया है।

जी में आया था कि चौबीसो अवतारों की संक्षेप लीलाऐंभी यहां लिखदूं; परन्तु विस्तार के भय से छोड़ दिया, न बढ़ाया॥

(दो॰) दुइ बनचर, दुइ बारिचर, चार विप्र दो राउ।
तुलसी! दश यश गाइके, भवसागर तरि जाउ॥

छप्पय।

चरण चिन्ह रघुबीर के, संतन सदा सहायका॥ अंकुश, अंबर, कुलिस, कमल, जव, धुजा, धेनुपद। शंष, चक्र, स्वस्तिक, जंबूफल, कलस, सुधाहृद॥ अर्द्धचन्द्र, षटकोन, मीन, बिंदु, ऊरधरेखा। अष्टकोन, त्रैकोन, इन्द्रधनु, पुरुषविशेषा॥ सीतापतिपद नित बसत, एते मंगल दायका। चरण चिन्ह रघुबीर के, संतन सदा सहायका॥२॥ (६)

वार्त्तिक।

चौबीसों अवतारों का मङ्गलाचरण करके, स्वामी श्री नाभा जी महाराज अब; साकेतपति श्री अवध बिहारी निज प्रभु श्री सीतापति रघुबीर जी के चरण पङ्कजों में के सुखदायक सहायक पापहारी जन उद्धारकारी चिन्हों का मङ्गलाचरण करते हैं।

श्री जानकी जीवन रघुबीर जी के पदकंज में "अंकुश" प्रमुख (अठतालीस) चिन्ह सदैव विराजते हैं; परम मङ्गल के देनेवाले तथा संतों की विशेष सहायता करने वाले हैं॥

"महारामायण" प्रमुख की मति से श्रीचरण चिन्ह तो वस्तुतः ४८ (अड़तालीस) हैं, २४ (चौबीस) दक्षिण पदपंकज में, और २४ (चौबीस) वामचरण सरोज में॥

श्री अगस्त्तिमुनीश्वर कृत "श्री रघुनाथ चरण चिन्ह स्तोत्र" में ४८ में से केवल १८ (अट्ठारह) ही रेखाओं का वर्णन है अर्थात् (१) अम्बुज (२) अंकुश (३) यव (४) ध्वज (५) चक्र (६) ऊर्द्धरेखा (७) स्वस्तिक (८) अष्टकोण (९) पवि (१०) बिन्दु (११) त्रिकोण (१२) धनु (१३) अन्शुक वा अम्बर अर्थात् वस्त्र (१४) मत्स्य (१५) शङ्ख (१६) चन्द्रार्द्ध (१७) गोष्पद और (१८) घट॥

ऐसेही, श्री किशोरी जी की एक कृपाश्रिता ने केवल ९ (नव) ही रेखाओं की बन्दना की है (सोरठा) बन्दौं सिय पद (१) रेख, (२) श्री लक्ष्मी, अरु (३) श्री सरयू। (४) शक्ती (५) पुरुष बिसेख, (६) स्वस्तिक (७) शर (८) धनु (९) चन्द्रिका॥

एवं, श्रीयामुनाचार्य्य महाराज जी ने "आल वन्दार स्तोत्र" में इन अठतालीस में से केवल सातही चिन्ह चुन के लिखे (१) दर (२) चक्र (३) कल्पवृक्ष (४) ध्वजा (५) कमल (६) अंकुश और (७) वज्र॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने तो अति कल्याण दायक केवल चारही चिन्ह लिखे, अर्थात् (१) ध्वज (२) कुलिश (३) अङ्कुश (४) कमल॥

(कवित्त) ध्यावहीं मुनीन्द्र राम पदकंज चिन्ह राज, सन्तन सहायक अरु मङ्गल सन्दोहहीं। ऊर्द्ध रेखा स्वस्तिक, अरु अष्टकोण, लक्ष्मी, हल, मूसल, अरु शेष, शर, जन जिय जोहहीं॥ अम्बर, कमल, रथ, बज्र, जव, कल्पतरु, अंकुश, ध्वजा, मुकुट, मुनि मन मोहहीं। चक्र औ सिंहासनऽरु यमदण्ड, चामर अपि, छत्र, नर, जवमाल दहिने पद सोहहीं॥१॥

(अथ चिन्हों के स्थान)

भक्तवत्सल श्री जानकीवर के दक्षिण पद की रेखाएं।

२४ जयमाल		१३ जव(अँगूठेमें)
२३ नर		१२ बज्र
२२ छत्र		११ रथ
२१ चामर		१० कमल
२० यमदण्ड		९ अम्बर
१९ सिंहासन	१ ऊर्द्ध रेखा	८ शर
१८ चक्र		७ शेष
१७ मुकुट		६ मूसल
१६ ध्वजा		५ हल
१५ अंकुश		४ लक्ष्मी
१४ कल्पतरु		३ अष्टकोण
	२ स्वस्तिक	

(कवित्त) वाम पद, सरयू, गोपद, भूमि, कलशा, पताका, जम्बूफल, अर्द्धचन्द्र, शंख, राजहीं । षटकोण, तीनकोन, गदा, जीव, विन्दु, शक्ति, सुधाकुण्ड, त्रिबली प्रताप सुर गाजहीं ॥ मीन, पूर्णचन्द्र अरु वीणा अपि, बंशी पुनि धनुष, तुणीर, हंस, चन्द्रिका, विराजहीं । एते चिन्ह श्रीसियपिय. पद पंकज के, "तपसी" मंगलमूल, सब सुख साजहीं ॥ २ ॥

(अथ चिन्हों के स्थान)

दीनबन्धु श्री जानकीवर के वामपदकी रेखाएं ।

३७ बिन्दु (अँगूठे में)		४८ चन्द्रिका
३६ जीव		४७ हंस
३५ गदा		४६ तूणीर
३४ तीन कोन		४५ धनुष
३३ षट्कोण	२५ सरयू	४४ बंशी
३२ शंख		४३ वीणा
३१ अर्द्धचन्द्र		४२ पूर्णचन्द्र
३० जम्बूफल		४१ मीन
२९ पताका		४० त्रिबली
२८ कलशा		३९ सुधाकुण्ड
२७ भूमि		३८ शक्ति
	२६ गोपद	

संख्या	रेखाओं के नाम	उनके रंग	उनकेध्यानसेलाभ विशेष	उसचिन्हसे काय्यावतार	
१	ऊर्द्ध्वरेखा	लाल(गुलबी)	महायोग;भवसिन्धु सेतु	सनकादिक *	*चारो
२	स्वस्तिक	पीत	मंगल.कल्याण	श्रीनारद जी	
३	अष्टकोण	लाल&सपेद	अष्टसिद्धिदायक यन्त्र	कपिल देव	
४	महालक्ष्मी	महासुन्दर गुलाबी	सर्व सम्पत्ति	श्रीलक्ष्मी जी	
५	हल	स्वेत	विजय	वलरामजीकाहल	
६	मूसल	धूम	शत्रु कानाश	वलरामजीकामूसल	
७	शेष	स्वेत	शान्तिप्रद	श्रीरामानजस्वामी, शेष	
८	शर	स्वेत;पीत	सद्गुण	प्रसिद्धरवाणसब	
९	अम्बर (वस्त्र)	नीला, बिजलीसा	भयार्त्तिहरण	बराह भगवन्	
१०	कमल	गुलाबी	हरि भक्ति	विष्णुकाकमल	
११	चार घोड़ों का रथ	घोड़े सपेद रथ विचित्र	विशेष पराक्रम	स्वयंभमनु; पुष्पक विमान	
१२	वज्र (पवि)	बिजलीसा	बलदायक; पापसंहारक	इन्द्रका वज्र	
१३	यव (जव)	स्वेत, रक्त	मोक्ष; शृंगार	कुवेर; यज्ञावतार	
१४	कल्पतरु	हरा	इच्छित फल	सुरतरु, पारिजात	
१५	अंकुश	श्याम	मन निग्रह		
१६	ध्वजा	विचित्र	विजय; यश		
१७	मुकुट	सोनहरा	भूषण	पृथु; दिव्यभूषण	
१८	चक्र	तप्तकांचन	शत्रु का विनाश	सुदर्शन; कल्कि	
१९	सिंहासन	तप्तकांचन	विजय		
२०	यम दण्ड	कांस	निर्भयता	यमराज; धर्मराज	

गिनती	नाम	रंग	ध्यान का विशेष फल	कार्य्यावतार
२१	चामर	धवल	हिय में प्रकाश	हयग्रीव
२२	छत्र	शुक्ल	दया, बुद्धि, ध्यान	कल्कि
२३	नर	गौर	भक्ति, शान्ति, सत्व गुण	दत्तात्रेय
२४	जयमाल	तड़ित, विचित्र	उत्सव	

अथ वाम चरण सरोज के चिन्ह ।

१	सरयू	स्वेत	भक्ति	बृजा गंगा इत्यादि
२	गोपद	स्वेत, लाल	भवसिंधु लंघन	कामधेनु, पृथु, धन्वन्तर
३	भूमि	पीत, लाल	क्षमा	कमठावतार
४	कलश	सुनहरा, स्वेत	भक्ति, जीवन मुक्ति	अमृत
५	पताका	बिचित्र	बिमलता	
६	जम्बुफल	श्याम	चारो पदार्थ	गरुड़जी, व्यासजी
७	अर्द्ध चन्द्र	धवल	भक्ति, शान्ति, प्रकाश	वामनभगवान
८	शंख	स्वेत, गुलाबी	जय, बुद्धि	वेद, हंस, दत्त, शंख.
९	षटकोण	लाल, सपेद	यन्त्र, षटविकाराभाव	कार्त्तिकेय
१०	तीनकोन	लाल	यन्त्र, योग	हयग्रीव; परशुराम
११	गदा	श्याम	जय	महाकाली, गदा
१२	जीव	दीप सा		जीव
१३	विन्दु	पीत	सर्वपुरुषार्थ	सूर्य्य; माया
१४	शक्ति	पीलीगुलाबी सुन्दर	श्री	मूलप्रकृति, शारदा, महामाया

गिनती	रेखाओं के नाम	उनके रंग	ध्यान से लाभ विशेष	उस चिन्ह के कार्य्यावतार
१५	सुधाकुंड	स्वेत लाल	अमृत रतन	ऋषभ
१६	त्रिबली	हरा, लाल, धवल	शोभा	वामन
१७	मीन	रूपासा	मङ्गलार्थ, शुभशकुन	
१८	पूर्णचन्द्र	धवल	सरलता, शान्ति, प्रकाश	चन्द्र
१९	वीणा	पीत, रक्त, स्वेत	यशगान	श्रीनारद जी
२०	वंशी	विचित्र		श्रीकृष्णजी की वंशी
२१	धनुष	हरा, पीला, लाल	यमवशगानहंतु	शार्ङ्ग, पिनाक, &c.
२२	तूणीर	बिचित्र	सप्त भूमि ज्ञान	परशु राम
२३	हंस	स्वेत, गुलाबी	विवेक, ज्ञान	हंसावतार
२४	चन्द्रिका	सर्वरगमय तड़ितवत्	अकथ प्रभाव	

☞ अठतालिसो चिन्हों में से २४ चौबीस चिन्ह दोनों चरणकमलों में बिराजमान हैं ॥ और, जो २४ रेखाएं श्री जनक किशोरी महारानी जी के बाम पदकंज में हैं, सोई २४ चिन्ह श्री प्राणबल्लभ जी के दक्षिण चरण सरोज में हैं। तथा जो २४ रेखा श्री जनक लली महारानी जी के बाएं चरणारबिंद में हैं, सोई २४ चिन्ह श्री प्राणप्रियतम के दाहिने पदपद्म में हैं ॥ यह मनस्थ रखना चाहिए।

दुःखहारी रेखाएं	सुखकारी रेखाएं	
१ अष्टकोण*	१ ऊर्द्ध रेखा	२ स्वस्तिक
२ हल	३ महालक्ष्मी	४ शेष
३ मूसल	५ शर	६ कंज
४ अम्बर	७ स्यन्दन	८ कल्पवृक्ष
५ कुलिश	९ मुकुट	१० सिंहासन
६ यव *	११ चामर	१२ छत्र
७ अंकुश	१३ पुरुष	१४ जयमाल
८ ध्वजा	* अष्टकोण	* यव
९ चक्र		
१० यमदण्ड	१५ सरयू	१६ पृथ्वी
११ गोपद	१७ घट	१८ जम्बुफल
१२ पताका	१९ जीव	२० बिन्दु
१३ अर्द्धचन्द्र*	२१ शक्ति	२२ सुधाहृद
१४ दर	२३ त्रिबली	२४ मत्स्य
१५ षट्कोण	२५ पूर्णससि	२६ वीणा
१६ त्रिकोण	२७ निषंग	२८ हंस
१७ गदा	२९ चन्द्रिका	* अर्द्धचन्द्र
१८ वंशी		
१९ धनुष		

४८ में १९ दुःखहारी हैं और २९ सुखकारी। ये* तीन दुःखहारी भी हैं और सुखकारी भी:— अष्टकोण, यव, और अर्द्धचन्द्र॥

करुणासिन्धु श्रीनाभाजी महाराज ने ४८ में से विशेष सहायक २२ (बाईस) चिन्हों का ही मंगलाचरण किया है, जिनमें से ११ (ग्यारह) प्रत्येक पद के हैं॥ अर्थात् (१) अंकुश (२) अम्बर (३) कुलिश (४) कमल (५) जव

(६) ध्वजा (७) चक्र (८) स्वस्तिक (९) ऊर्द्ध रेखा (१०) अष्ट कोण (११) पुरुष। ये ग्यारह दाहिने पद के और (१) गोपद (२) शंख (३) जम्बु फल (४) कलस (५) सुधाकुण्ड (६) अर्द्धचन्द्र (७) षट्कोण (८) मीन (९) बिन्दु (१०) त्रिकोण (११) इन्द्रधनुष ये ग्यारह बाएं चरणकंज के॥

टीका। कवित्त।

सन्तनि सहाय काज, धारे राम नृपराज चरण-सरोजन में चिन्ह सुखदाइये। मनही मतंग मतवारो हाथ आवै नाहिं, ताकेलिये "अङ्कुश" लै धास्यो, हिये ध्याइये॥ सठता सतावै शीत, ताही तें "अम्बर" धस्यो हस्यो जन शोक ध्यान कीन्हे सुखपाइये। ऐसेही "कुलिश" पाप पर्वत के फोरिबे को, भक्ति निधि जोरिबे को "कंज" मनल्याइये॥ १५॥

वार्त्तिक तिलक।

सन्तों की सहायता के अर्थ नृपराज महाराज श्रीरामचन्द्र कृपासिन्धुजी ने अपने पदकमलोंमें भक्तों के सुखदाई चिन्ह वृन्द धारण किये हैं॥ मन रूपी मतवाला गजेन्द्र अपने बशमें नहीं होता है; इसी लिये प्रभु ने "अंकुश" चिन्ह निज चरण पंकज में धारण किया, कि भक्त जन निज मन रूपी मत्त हस्ती को बश करने

के निमित्त, उक्त चिन्ह का ध्यान अपने हृदय में करके, इसकी सहायता से वश करलें। इससे "अंकुश" चिन्ह का ध्यान करना चाहिये॥ सठता (जड़ता*) रूपी शीत हरिजनों को दुख देता है, इसी लिये "अम्बर" (वस्त्र) चिन्ह को धरा, कि जिसमें इस चिन्ह का ध्यान भक्त जनों के शोक को हरे, तथा प्रतिष्ठादि सुख प्राप्त हों।

* (चौ०) जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गयहु न मज्जन पाव अभागा॥ (मानस राम चरित)

इसी प्रकार, पाप रूपी पर्वत के फोड़ने के हेतु "वज्र" रेखा, और प्रेम मय नवधा भक्ति रूपी नवों निधियों के जोड़ने के हेतु, सर्व निधीश्वरी श्री लक्ष्मी जी का वास स्थान कमल तिसका चिन्ह धारण किया है। उक्त सहाय के हेतु दोनों चिन्ह मन में लाके ध्यान करना चाहिये॥

टीका। कवित्त।

"जव" हेतु सुनो सदा दाता सिद्धि विद्याहीं को, सुमति सुगति सुख सम्पति निवास है। छिनमें सभीत होत कलि की कुचाल देखि, "ध्वजा" सो विशेष जानो अभै को विश्वास है॥ गोपद सो ह्वैहैं भवसागर नागर नर जो पै नैन हिय के लगावै, मिटै त्रास है। कपट कुचाल मायाबल सबैं जीतबे को, "दर" को दरस कर, जीत्यो अनायास है॥ १६॥

वार्त्तिक तिलक ।

"जव (यव)" चिन्ह के धारण का अभिप्राय सुनो कि ध्यान करनेवाले को यह चिन्ह सर्व विद्या सर्व सिद्धियां देता है; और सुमति सुगति सुखसम्पत्ति का निवास स्थान है; इससे, ध्याता को भी इन गुणों का घरही कर देता है ॥

कलिकी कुचालों को देख देख के भक्त जन क्षणमात्र में भय ग्रसित हो जाते हैं, उनको विशेष करके अभयत्व का विश्वास दिलाने के लिये प्रभु ने ध्वजा चिन्ह को धारण कियाहै । और "गोपद" चिन्ह धारण करने का हेतु यह है कि जो प्रवीण (नागर) जन इस का ध्यान करेगा तिसको अपार भवसागर गोपद के सरीखा सुलभ हो जायगा, सो जो कोई जन अपने हृदय के नेत्रों को इस "गोपद" के ध्यान में लगावै, तो उसको भवसागर में डूबने आदि का डर मिट जावै दंभ कपट कुचाल इत्यादिक माया के जालों को बिना प्रयास जीतने के हेतु "शंख" चिन्ह को श्री प्रभुने धारण किया तिसको दर्शन करके भक्तजनों ने उक्त माया जाल को बिना प्रयास ही जीत लिया, क्योंकि शंख बिजयकारी शब्द संयुत है ॥ इस सहायता रूप कृपा की जय ॥

टीका । कवित्त ।

कामहुं निशाचर के मारिबे को "चक्र" धास्यो,

मङ्गल कल्याण हेतु स्वस्तिक हुँ मानिये। मंगलीक "जम्बूफल", फल चारिहूं को फल, कामना अनेक बिधि पूर्ण, नित ध्यानिये॥ "कलस" "सुधाकोसर" भरयो हरि भक्ति रस, नैन पुट पान कीजै, जीजै मन आनिये। भक्ति को बढ़ावै औ घटावै तीन तापहूं को, "अर्ध चन्द्र" धारण ये कारण हैं जानिये॥ १७॥

वार्त्तिक तिलक।

कामरूपी निशाचर के बध के लिये "चक्र" चिन्ह को धारण किया, मङ्गल और कल्याण के निमित्त "स्वस्तिक" रेखा का धारण मानिये॥ "जम्बूफल" को मङ्गलों का करने वाला, तथा चारोंही फलों का फल रूप, और सब मनकामनाओं को नाना प्रकार से पूरा करनेवाला, जानके नित्य ध्यान कीजे॥ "अमृत का घड़ा" और "अमृत का हृद" (तालाब) इसलिये धारण किये, कि इन्हें ध्यान करनेवाले के हृदय में भक्तिरस भरें; और मानसिक नयन पुट से पीकर परम अमरत्व प्राप्त हो॥ "अर्द्धचन्द्र" चिन्ह के धारण के कारण ये जानिये कि, इसके ध्यान से तीनों ताप घटते हैं, और प्रेमाभक्ति बढ़ती है॥

टीका। कवित्त।

विषया भुजङ्ग बलमीक तनमांहिँ बसै, दास को न डसै, ताते यत्न अनुसरयो है। "अष्ठकोन" "षटकोन"

श्रौ "त्रिकोन" जंत्र किये, जिये जोई जानि जाके ध्यान उर भस्रो है। "मीन" "विन्दु" रामचन्द्र कीन्ह्यों बशीकर्ण पायँ ताहिते निकाय जन मन जात हस्रो, है। संसार सागर को पारावार पावैं, नाहिं "ऊर्ध्वरेखा" दासन को सेतुबन्ध कस्रो है ॥ १८ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

शरीर रूपी बल्मीक (बामी वा बमीठ) में कामादिक विषय रूपी सांप जो बास करता है, सो जिसमें भक्तों को न काटखाय, इस लिये प्रभुने ये यत्न किये, कि "अष्टकोण", "षटकोण", और "त्रिकोण" यंत्रों को धारण किया। जिसने इस बात को जानके इन रेखाओं का ध्यान हृदयमें किया, सोई जन विषय भुजंग से बच के अखण्ड जिया ॥

और श्रीरामचन्द्र जी ने अपने पाय (पद पङ्कज) में "मीन" और "बिन्दु" चिन्हों को बशीकरण यन्त्र बनाके धारण किया, क्योंकि मीन जगत बशीकारक "कामदेव" का ध्वजा है तथा "बिन्दु" (बेंदी) भी वशीकरण तिलक रूप है। इसी से, श्री प्रभु चरण चिन्तवन करने. हारे समस्तजनों के मन हरे जाते हैं अर्थात् प्रभुके बिबश होते हैं ॥ अपार संसार रूपी समुद्र का पार कोई नहीं पा सकता; अतएव ऊर्ध्व रेखा रूप सेतु (पुल) बांधा है, कि जिसमें ध्यानारूढ़ होके, मेरे भक्त, सुगमही, संसारसागर उतर जावें ॥

टीका। कवित्त।

"धनु" पद मांहिँ धख्यो, हख्यो शोक ध्यानिन को, मानिन को मास्यो मान, रावणादि साखिये। "पुरुष विशेष" पद कमल बसायो राम हेतु सुनो अभिराम, श्याम अभिलाखिये॥ सूधो मन सूधो बैन सूधो करतूति सब ऐसो जन होय मेरो, याही के ज्यों राखिये। जोपै बुधिवन्त रसवन्त रूप सम्पति में, करि हिये ध्यान हरिनाम मुख भाखिये॥ १९॥*

वार्त्तिक तिलक॥

श्री धनुधारीजी ने पदकंज में "इन्द्रधनुष" का चिन्ह धारण करके ध्यानधारी जनों का शोक नाश किया, क्योंकि महामानी रावणादिकों के मान और प्राण का क्षय, धनुषही से किया; सो वे मरके साक्षी दे रहे हैं कि हम लोग भक्त द्रोही थे तिन्हों को श्री राम धनुष ने नाश किया; तैसेही, "इन्द्रधनुष" चिह्न ध्यानियों के समस्त शत्रुओं का नाश करके विशोक करेगा॥ "पुरुष" नाम चिन्ह को अपने पदकमल में बसाया, तिसका अति सुन्दर कारण सुनके श्यामसुन्दर सियावर श्री राम की अभिलाषा कीजे; श्री प्रभु इस चिन्ह से यह जनाते हैं कि जो हमारा जन सरल

* १५ वें से १९ वें तक, इन पांच चार कवित्तों को किसी किसी ने "क्षेपक" बताया है।

(सूधा) मनवाला, सरल बचनवाला, सरल कर्म वाला और इस चिन्ह का ध्यान करनेवाला हो, तिसको इसी चिन्ह के समान मैं अपने पद में अर्थात् पद प्रेम रूपी स्थान में, तथा (अन्त में) परम पद श्री साकेत धाम में रखूंगा॥ जो जन कदाचित् ऐसे बुद्धिमान हों, तथा श्री राम रूप सम्पत्ति में रस (स्नेह)वन्त हों, सो समस्त श्री चरण चिन्हों का ध्यान करके श्री सीताराम नाम ही मुख से निरन्तर कहैं॥

छप्पय।

बिधि[१], नारद[२], शङ्कर[३], सनकादिक[४], कपिलदेव[५], मनुभूप[६]; नरहरिदास[७], जनक[८], भीषम[९], वलि[१०], शुक[११] मुनि, धर्मस्वरूप। अंत रंग अनुचर हरि जू के, जो इन कौ यश गावैं; आदि अन्त लौ मङ्गल तिनको स्रोता बक्ता पावैं। अजामेल[१२] परसंग यह निर्णय परम धर्म के जान; इनकी कृपा और पुनि समझै "द्वादश भक्त" प्रधान॥ ३॥ (७)

वार्त्तिक तिलक।

स्वामी श्री नाभा जी अब १२ (द्वादश) महाभक्त राजों के नामोच्चारण पूर्व्वक भक्तों की "माला" का प्रारम्भ करते हैं।

(१) श्री ब्रह्माजी (२) श्रीनारदजी (३) श्री उमापति शिवजी (४) [१] श्रीसनक [२] श्रीसनन्दन; [३] श्रीसनातन; [४] श्रीसनत्कुमार (५) श्रीकपिलदेवजी (६) महाराज श्री मनु जी (७) श्री प्रह्लादजी [नृसिंह दास]; (८) पिता श्री जनक जी महाराज (९) श्री भीष्माचार्य्य जी (१०) श्री बलिजी (११) परम हंस श्री शुकदेव जी महा मुनि, भागवत, धर्मस्वरूप, (१२) श्री अजामिलजी॥

जो जन श्री सीतारामचन्द्रजी के इन ऐकान्तिक प्रिय समीपी प्रधान द्वादश भक्तराजों के यश गावें, तिन महा भक्तों के यशों के श्रोता वक्ता आदि अन्त तक (सदैव) मंगल पावैं। परम धर्म के निर्णय में श्री-अजामिल जी का प्रसंग जानने योग्य है; अर्थात् श्री नामोच्चारणादि भागवत धर्म सप्रेम करने की तो बातही क्या है, नामाभास मात्र ने भी सब महापातकों का विनाश कर ही दिया॥ ये द्वादश, (ऊपर लिखे हुए श्री विरंचि महेश नारदादि बारहो), तो महा प्रसिद्ध भक्तराज हैं ही, पुनि और समस्त 'भक्त मात्र इन्हीं

की कृपा उपदेश तथा सतसंग से समझना चाहिये; अर्थात् श्री लक्ष्मीनारायण की शिक्षित वैष्णव संप्रदायों के भागवतधर्म विशेष के आचार्य्यवर और प्रचारक शिरोमणि ये ही बारहो तो हुवे॥

(दो०) "बिधि, शिव, नारद, शुक, जनक, सनकादिक, प्रहलाद। ज्यों हरि आपुन नित्य हैं, त्यों ये भक्त अनाद॥"

(१) श्री ब्रह्मा जी।

(सो०) बन्दौं बिधिपद रेणु, भवसागर जिन कीन्ह यह।
सन्त सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल विष वारुणी॥

सृष्टि और सुख दुःखादि प्रारब्धरेखाओं के कर्त्ता जगत पिता सुगम अगमवरदाता श्री ब्रह्मा जी की (श्री भगवत नाभी कमल से जन्म आदि) कथाऐं, पुराणों में अगणित हैं। "हानि लाभ जीवन मरन यश अपयश बिधि हाथ"॥ श्रीबिधाता जी यद्यपि सब निष्ठाओं में श्रेष्ठ तथा प्रधान हैं, तथापि इनकी गणना "धर्मप्रचारक निष्ठा" में प्रत्यक्ष है। जिन देव मुनि गो महि इत्यादिक की प्रार्थना से भगवत के विविध अवतार होते हैं उन मण्डलों के अगुआ और मुखिया श्री अज ही तो होते हैं, सो व्यवस्था किस्को विदित नहीं हैं?

(२) श्री नारद जी।

(चौ०) बन्दौं श्री नारद मुनि नायक।
करतल बीणा राम गुण गायक ॥

अप्रतिहतगति देवर्षि श्रीनारद भगवान् तो परमात्मा के मन ही हैं, भगवत के अवतार हैं, और जगत के परम उपकारक प्रसिद्ध हैं। सेवापूजा, कीर्तन, प्रसाद, भक्ति प्रचारक इत्यादिक सबही निष्ठाओं में प्रधान हैं। पुराण मात्र में आप की शुभ कथा भरी है। सर्व लोकों में आप का पर्य्यटन केवल परोपकार के निमित्त यही आपका व्रत सा है ॥

(३) श्री शिव जी।

टीका। कवित्त।

द्वादश प्रसिद्ध भक्तराज कथा "भागवत" अति सुखदाई, नाना विधि करि गाए हैं। शिवजी की बात एक बहुधा न जानै कोऊ, सुनि रस सानै, हियो भाव उरझाए हैं ॥ "सीता" के बियोग "राम" बिकल बिपिन देखि "शंकर" निपुण "सती" बचन सुनाए हैं। "कैसे ये प्रबीन ईश ? कौतुक नवीन देखौं"; मनेहूँ करत, अंग वैसेही बनाए हैं ॥ २० ॥

वार्त्तिक तिलक।

बारहो प्रधान भक्त राजों की कथाएं "श्री मद्-भागवत" प्रभृति में व्यास शुकादि ने नाना प्रकार से कही हैं। परन्तु श्री महादेव जी की एक बात प्रायः

सब लोग नहीं जान्ते; सो उस अपूर्व वार्त्ता को सुन के, अपने हृदय को श्रीसीताराम भक्ति रस में सान देना चाहिये, देखिये श्रीमहेश्वरजी श्री सीताराम भक्ति के भाव में अपने मन को कैसा उलझाए (अटकाए) हुए हैं॥

श्रीशंकर जी तो परम प्रवीण ही हैं परन्तु "सती" जी ने मोह वश श्री महादेव जी से कहा कि "हेप्रभो! इन (श्रीराम) को आप प्रवीण परमेश्वर परमात्मा कहते हैं सो कैसे? क्योंकि इनका यह कौतुक नवीन तो देखही रही हूं कि स्त्री श्रीसीताके वियोग से बन में ये विकलहैं!" तब श्री शिवजी ने बहुत समझाया पर न समझीं, और परीक्षा लेने को चलीं ही। तब, जगद्‌गुरु श्री शिवजी ने वरज दिया कि "सावधान! कोई अविवेक की क्रिया मत करना"। तथापि, सतीजी ने जगजननी श्रीरामप्रिया श्रीजानकी जी महारानी कासा अपना रूप बनाया॥

टीका। कवित्त।

सीता ही सो रूप वेष, लेश हू न फेर फार, रामजी निहारि नेकु मन में न आई है। तब फिरि आइकै सुनाइ दई शंकर को; अति दुख पाइ, बहु बिधि समुझाई है॥ इष्ट को स्वरूप धस्यो, ताते तनु परिहस्यो, पस्यो बड़ो शोच मति अति भरमाई है। ऐसे प्रभु भाव पगे, पोथिन में जगमगे, लगे मो को प्यारे, यह बात रीझि गाई है॥ २१॥

वार्तिक तिलक।

अपने जान्ते तो सतीजीने कुछ भी श्रीजनकललीजो के रूप और वेष से अन्तर न रक्खा; पर, सर्वज्ञ श्रीप्रभु उसको देख के मन में कुछ भी न लाए। तब फिर आके सतीजी ने श्रीशिवजी को सब सुना दिया; श्रीशिवजी ने मन में बड़ा ही दुख पाया और अनेक प्रकार से सती जी को समझाया कि तुम ने मेरी परम इष्ठ देवता श्रीजानकी सीता जी महारानी का रूप धारण किया, अतः मैं ने तुम्हारे इस शरीर में से पत्नी भाव को त्याग किया। श्री सती जी मति के भ्रम वश यों बड़े ही शोच में पड़ीं। सो कथा प्रसिद्ध ही है कि सती जी ने वह तन त्याग ही तो दिया और श्रीशिव जी से तब मिल सकीं कि जब श्री गिरिवरराजकिशोरी हुईं॥

अहो! धन्य श्रीगिरिजापति हैं कि अपने प्रभु के भाव में ऐसे पगे हुए हैं कि पुराणों में आप की भाव भक्ति की कथाएं जगमगा रही हैं। यह बात अतिशय प्रिय मुझे लगी; इससे रीझ २ के गान किया है॥

——:o:——

टीका। कवित्त।

चले जात मग उभै खेरे शिव दीठि परे, करे परनाम, हिय भक्ति लागी प्यारी है। पारवती पूछें "किये कौन को? जू! कहो मोसों, दीखत न जन कोऊ"

तब सो उचारी है ॥ "बरष हजार दश बीते तहां भक्त भयो; नयो और ह्वैहै दूजी ठौर बीते धारी है।" सुनिकै प्रभाव, हरि दासनि सों भाव बढ़्यौ, रढ़्यौ कैसे जात चढ़्यौ रंग अति भारी है ॥ २२ ॥

वार्त्तिक तिलक।

एक समय श्री चन्द्रभूषण अपनी प्राणप्रिया श्री पारवतीजी के सहित कैलाशशिखर को छोड़कर भूमण्डल में विचरने के हेतु निकले, मार्ग में दो उजड़े २ छोटे ग्रामों के टीले (खेरे) देखके नन्दी से उतर के दोनों को प्रणाम किया। क्योंकि भक्तों की भक्ति आप को अतिही प्यारी लगती है। तब श्री पारवतीजी ने पूछा कि "प्रभो! आपने प्रणाम किस्को किया? प्रत्यक्ष में तो कोई जन दिखाई देताही नहीं।" श्रीमहादेवजी ने उत्तर दिया कि "हे प्रिये! यह जो एक टीला दीखता है तहां दस हजार वर्ष बीते कि एक श्रीसीतारामानुरागी परम भक्त निवास करते थे; और वह जो दूसरा खेरा दिखाई दे रहा है उसमें दस सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर एक दूसरे भक्तराज निवास करनेवाले हैं। इसी से ये दोनों स्थल मेरे बन्दनीय हैं" ऐसा आश्चर्य्यजनक प्रेम देख और भागवत प्रभाव सुनके, श्रीपार्वती जी ने इस बात को अपने मन में धारण किया, उनका प्रेमभाव भगवद्भक्तों में अत्यन्तही बढ़ा, कि जो

क्योंकर कहा जासकता है (रढ्यो कैसे जात), क्योंकि उनके अन्तःकरण रूपी स्वच्छ वस्त्र पर अनुराग का रंग गहरा चढ़आया ॥

श्लोक। भवानीशङ्करौ बन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥

श्री शिवजी इसी से भागवतों में शिरोमणि गिने जाते हैं और इनके अनेक चरित्र ऐसे परउपकार भरे हैं कि जैसे "विषभक्षक, त्रिपुरारि," इत्यादिक नामों से ही सूचित होते हैं। आपकी कथासमूह पुराणों में प्रसिद्ध हैं; आप जगद्गुरु परमोपदेशक हैं, श्रीरामनाम माहात्म्य के प्रकाशक हैं, और श्री काशीजी में मरनेवाले जीव मात्र को श्रीरामतारक मन्त्र सुनाके मुक्ति देते हैं ॥

(४) सनकादि।

सनकादिक चारो भाई (१) श्रीसनक (२) श्रीसनन्दन (३) श्रीसनातन (४) श्रीसनतकुमार, श्रीभगवत् के अवतार और श्रीब्रह्माजी के पुत्र हैं। (चौपाई) जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुण शील सुहाए ॥ ब्रह्मानन्द सदालयलीना। देखत बालक बहु कालीना ॥ रूप धरे जनु चारिउ वेदा। समदरसी मुनि विगत विभेदा ॥ आसा बसन व्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होय तहँ सुनहीं ॥ मुनि रघुपति छवि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी ॥

(दोहा) बार बार अस्तुति करि, प्रेम सहित सिर नाइ॥
ब्रह्म भवन सनकादि गे, अति अभीष्ट वर पाइ॥

(५) श्रीकपिलदेव।

श्रीकपिलदेव जी श्रीभगवत के अवतार पुरुष प्रकृति विवेकमय तत्त्वज्ञान खानि साङ्ख्य शास्त्र के विशेष आचार्य्य हैं॥ (चौपाई) आदि देव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहि "कपिल" कृपाला॥ "सांख्य शास्त्र" जिन्ह प्रगट बषाना। तत्व बिचार निपुन भगवाना॥

(६) श्रीमनुजी।

यह बात तो सभी जान्ते हैं कि "मनु" ही से मनुज, मनुष्य (नर) वा मानव सृष्टि हुई है। "श्री स्वायंभू मनु जी" की कथित "मनुस्मृति" सर्व धर्मशास्त्रों में अग्रगण्य है॥ आपकी कठिन तपस्या, अलौकिक भजन, विलक्षण प्रीति, तथा अनन्यभक्ति तो श्रीतुलसीकृत रामायण "मानस राम चरित" बालकाण्ड में प्रसिद्ध ही है कि जिन्होंने सर्वावतारी पर ब्रह्म को पुत्र करके प्रत्यक्ष सब को सुलभ कर दिया॥ स्वायंभू मनु अरु शतरूपा। जिनते भइ नरसृष्टि अनूपा॥ (दोहा) जासु सनेह सकोच बश, राम प्रगट भए आइ। जे हरहिय नयनन कबहुँ, निरखे नहीं अघाइ॥

(७) श्री प्रह्लाद जी।

श्री नरहरि दास अर्थात् "श्रीप्रह्लाद जी" द्वादश भक्त-

राज में हैं; ये महाभागवत "दास्य निष्ठा" में अग्रगण्य हैं। श्रीनरसिंहावतार आपही के हेतु प्रसिद्ध है ही। श्री नरसिंह जी तथा श्री प्रह्लाद जी का यश अनेक पुराणों में गाया हुआ है। भगवत की इच्छा से श्री सनकादिक ने "श्री जय, श्री बिजय" को तीन जन्म निशाचर होने का शाप दिया; पुनः भगवत तथा श्री सनकादिक ने शापानुग्रह किया कि भगवत अवतार लेले के तीन जन्म में उद्धार करेंगे। सो पहिले जन्म में "हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु" हुए; दूसरे जन्म में वही "रावण और कुम्भकर्ण"; एवं तीसरे जन्म में "शिशुपाल और दन्तवक्त्र"॥

जब हिरण्याक्ष को भगवत ने बाराह अवतार लेके मारा, तब हिरण्यकशिपु ने तप करके श्री ब्रह्मा जी से बर मांगा कि किसी देशकाल में किसी अस्त्र शस्त्र से किसी जीव से मैं मारा न जाऊं। श्री ब्रह्मा जी ने ऐसाही बर दिया। उसकी स्त्री के गर्भ में श्री प्रह्लाद जी थे इसलिये श्री नारद जी ने राजा इन्द्र से उसे बचाकर ज्ञानोपदेश किया। हिरण्यकशिपु अलौकिक बर पाके राज गादी पर बैठ देवतों को कष्ट देने लगा। परन्तु श्री प्रह्लाद जी जिसके बेटे हुए उसके भाग्य की क्या बात है। जब गुरु जी पढ़ाने लगे आपने "श्रीसीताराम सीताराम" की मधुरध्वनि करना

आरम्भ किया । बरंच पाठशाला भर के लड़कों को इसी में लगा दिया । और इस्के बिरुद्ध यद्यपि उनके पिता माता गुरु ने लाख समझाया पर आपने भगवत बिमुख बाप की एक न मानी ॥

दुष्टपिता की आज्ञा से ये पहाड़पर से गिराए गए, जल में डुबाए गए, आग में जलाए गए, हाथी तथा हत्यारों से प्राण लेने का उद्योग किया गया, बिष दिया गया, यह सब किया परन्तु जिस श्री प्रहलादजी के मुखारबिन्द पर अष्टप्रहर श्रीसीताराम नाम बसता था उनका एक बाल भी बांका न हुआ। तब हिरण्य कशिपु खड्ग निकाल क्रोध से लाल हो आपसे पूछने लगा "बता तेरा रक्षक कहाँ है ?" आप ने उत्तर दिया कि "वह समर्थ सर्व व्यापी है" उसने पूछा कि क्या वह इस खम्भे में भी है जिस्में तू बँधा है ? श्री भक्त राजमहाराज बोले कि हां निस्सन्देह ऐसाही है " उस मूर्ख तामसी ने जों ही उस खम्भे में मुष्टिका मारी, उस खम्भे में से महा भयङ्कर प्रचण्ड शब्द के साथ साथ अति तेजमय महाभयानक रूप ऐसी एक तेजोमयी मूर्त्ति उस्को देख पड़ी कि जिस्को वह न तो मनुष्य ही कह सकता था और न सिंह ही समझ सकता था । यह अद्भुतअवतार मध्यान्ह समय बैसाख शुक्ल चतुर्दशी को भक्तवत्सल भगवत ने श्रीप्रहलाद जी के निमित्त लिया, "मुलतान" में कि जो उक्त कनककशिपु की राजधानी थी ।

बहुत काल तक लड़ाई होती रही। अन्त की सन्ध्या काल में घर के द्वार की देहली पर अपनी जांघ पर रख के अपने नखों से उसका शरीर विदार डाला। ब्रह्मा शिव इन्द्र तथा सब देवतों की और विशेष कर के श्रीप्रह्लाद जी की स्तुति से प्रसन्न हो भक्तिवर दिया। और राज तिलक देके अन्तर्ध्यान हो गए॥

(सवैया)

आरतपाल कृपाल जो राम जहां सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नाम प्रताप महा महिमा अकरे किय छोटेउ खोटेउ बाढ़े॥
सेवक एक ते एक अनेक भए तुलसी तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि को जिन पाहन ते परमेश्वर काढ़े॥

श्रीप्रह्लाद जी के राज में भगवद् भक्ति कैसी फैली इसका कहना ही क्या है॥ श्री भगवत की भक्तवत्सलता की जय॥

---

(८) श्री जनक जी।

पिता श्रीजनक जी महाराज योगीराज की महिमा वर्णन कर सके ऐसा त्रिभुवन में कौन है ? भगवद्गीता में भगवत् ने प्रसंगतः आपही का नाम कहा है ("जनकादयः" अ० ३ श्लो० २०) जिनके ज्ञान वैराग्य रूपी प्रचण्ड प्रभाकर को देख श्री शुकादि ऋषीश्वरों के भी हृदय कमल विकशित होते थे।

☞ पृष्ठ ७८ में, बारहवां "धर्म स्वरूप" । ("अजामिल" नहीं)

(चौपाई) प्रणवौं परिजन सहित विदेहू। जिनहि रामपद गूढ़ सनेहू॥ योगभोग महँ राखेउ गोई। राम विलोकत प्रगटेउ सोई॥ जासु ज्ञान रवि भवनिशि नाशा। वचन किरण मुनि कमल विकाशा॥

आप की "सौहार्द निष्ठा" की बात ही क्या है कि जगजननि महारानी श्रीजानकी जी ने ही जिनको स्वयं अपना पिता मान लिया, और प्रभु ने भी "पितु कौशिक वशिष्ट सम जाने"॥

(९) श्री भीष्म जी।

श्रीभीष्माचार्य्य जी को बहुतेरे महाशयें ने "धर्म कर्म" निष्ठा में लिखा है। श्रीभीष्माचार्य्य जी आठ वसुओं में से एक "वसु" के अवतार हैं। इनकी माता साक्षात "श्री गंगाजी" और पिता महाराज "शन्तनु" जी हैं इनकी प्रशंसनीय कीर्त्ति "महाभारत" इत्यादि में देखनेही सुन्ने योग्य है। ज्ञान वैराग्य भक्ति और धर्मशास्त्र के बड़े ही विज्ञ आचार्य्य हुए हैं, बड़े ही पर उपकारी थे यहां तक कि महाभारत की कठिनलड़ाई में श्रीयुधिष्ठिर महाराज के लिये, अपने मरने का उपाय आपही बतादिया, आपने बाणशय्या पर शयन किया, और पर्व का पर्व नीति व्याख्या की॥ महाभारत में भगवान् अपनी प्रतिज्ञा छोड़ के महाभागवत भीष्मजी के प्रण को पूरा करने के निमित्त अपने भक्त अर्जुन जी के हितार्थ रथ का चक्र लेकर भीष्मजी पर

दौड़े, यहां तक भक्तवत्सलता भगवत की देखिये ॥

बावन दिन पर्य्यन्त शर शय्या पर रहके सन्त और भगवन्त के समागम में प्राण परित्याग किया ॥

श्रीकृष्णभगवान के सामने ही परमधाम को गए ॥

(१०) श्री बलि जी ।

राजा बलिजी श्रीप्रहलाद जी के पौत्र (बिरोचन के पुत्र) "धर्मकर्म" निष्ठा में वर्णित हैं। इनने १०० (एक सव) यज्ञ का संकल्प करके यज्ञ करना आरम्भ किया। सुरेशमाता श्री अदिति जी ने भगवत से विनय किया कि बलि मेरे बेटे (इन्द्र) का राज लेके इन्द्रपद की अचलता के निमित्त यज्ञ कर रहा है। भगवत ने "श्री वामन रूप" धारण कर राजा बलि से तीन डेग पृथ्वी भीख मांगी। यद्यपि दैत्यकुलगुरु शुक्र जी ने बलि को रोका, पर इन ने उनकी एक न सुनी और दान देही दिया। पृथ्वी नापने के समय बामन से विराट हो कर हरि ने दोनों लोक (स्वर्ग, पाताल) नाप लिये; और शेष तीसरे डेग की जगह बलि जी ने अति हर्षित मन से अपना शरीर निवेदन कर दिया। प्रभु ने प्रसन्न हो अगले जन्म में सुर पुर का राज्य और ततकाल इस जन्म में पाताल का राज्य बली जी को अनुग्रह किया। केवल इतना नहीं वरन भक्त से छल करने के कारण स्वयं आपने (उनके द्वारपाल होकर) उस (वामन) रूप से नित्यशः उनको दरशन देना स्वीकार करलिया।

(११) श्री शुक जी।

(श्लोक) निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृत द्रवसंयुतं। पिवत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

परमहंस श्रीशुकदेव जी की आदि अवस्था की कथा कुछ पांचवें पृष्ठ में लिख भी आए हैं। आप महर्षि श्रीव्यास भगवान् के पुत्र हैं। आपही ने श्रीमद्भागवत सुनाके श्रीपरीक्षित महाराज को एक सप्ताह मात्र में परमधाम को पहुँचा दिया॥

किसी समय श्रीपारवतीजी ने श्रीशिवजी से श्रीरामनाम माहात्म्य के तत्त्वज्ञान का गुप्त रहस्य सुनाचाहा; तब श्रीशङ्कर जी ने अपनी प्राणप्रिया की यह अनोखी अभिलाषा देखकर (जैसे प्रभु की कृपा ने उनके अन्तः करण से अन्य साधनों की महिमा का अभाव कर दिया था) प्रथम उस शुभस्थान को अपर जीवों से शून्य करके उसके अनन्तर अपना उपदेश प्रारम्भ किया। श्रीगिरिजा जी तो नींद वश हो गईं, परन्तु हरिइच्छा से शुक पक्षी का एक बच्चा वहां रहगया था, सो श्रीरामनाम माहात्म्य श्रवण के प्रभावसे वही बच्चा परम तत्त्ववेत्ता तथा अमर होकर "हूं हूं" कार भरता रहा; महेश्वर ने यह जानकर शीघ्र उसको मारने की इच्छा की। भागकर उसने श्री व्यास जी की धर्मपत्नी के पेट में जा शरण लिया॥

(१२) श्री धर्मराज जी । *

"अजामिल" जी की टीका (कवित्त)

धस्यौ पितु मातु नाम " अजामेल ", सांचो भयो, भयो अजा मेल, तिया छूटी शुभ जात की । कियो मद पान, सो सयान गहि दूरि डास्यौ, गास्यौ तनु वाही सों, जो कीन्हो लैकै पातकी । करि परिहास काहू दुष्ट ने पठाए साधु, आए घर, देखि बुद्धि आइ गई सातकी । सेवा करि सावधान, सन्तन रिझाइ लियो, "नारायण" नाम धस्यौ गर्भ बाल पात की ॥ २१ ॥

* ☞ पृष्ठ ७९ में "(१२) श्रीअजामिलजी" नहीं, वरंच "(१२) श्री धर्मराज जी"

वार्त्तिक तिलक ।

ये ब्राह्मण के पुत्र थे; इनका नाम माता पिता ने अजामेल रक्खा था । सो वह अजामेल सच्चा ही हो गया, अर्थात् अजा (माया, अविद्या) की अन्त सीमा शूद्री वेश्या मय वह होगया; और ब्राह्मण ज्ञाति शुभ धर्मपत्नी को छोड़ दिया । इस कार्य्य का कारण अब टीकाकार बताते हैं कि " कियो मद पान " अर्थात मद पान करतेही सात्विकी बुद्धि ने अन्तःकरण को परित्याग किया उसके पयान करते ही तामसी दशा प्रगट हुई, तमोगुण के करतब होने लगे, पिता के रक्खे हुए नाम ने अपनी सचाई दिखाई ॥ सत्यसंकल्प प्रभु के अनुरागियों के साथ लौकिक परिहास का भी कैसा अनोखा फल होता है सो देखिये ।

किसी खलने हँसी से सन्तों को भेज दिया (कि अजामिल बड़ा साधु सेई हरि भक्त है उसके घर जावो) सन्त चले चले अजामिल के घर आए; उनके दर्शन से उसकी बुद्धि श्रीसीतारामकृपासे सात्विकी हो आई; अर्थात् सन्तन में श्रद्धा आगई। और सावधानता से सेवा करिके साधुओं को रिझाय लिया। जब सन्त चलने लगे तब उस गर्भवती अपनी दासी को सन्तन के चरण पर गिराय के बोला कि इस गर्भवती को आसीस दिया जाय। सन्त ने प्रसन्न होके कहा कि श्रीरामकृपासे "इसके पुत्रही होगा, सो उसका तू 'नारायण' नाम रखना"। साधु तो ऐसा कहके चले गए; कालान्तर में उसके पुत्र जन्मा और कुछ काल का हुवा ॥

टीका । कबित्त ।

आइ गयो काल, मोह जाल में लपटि रह्यौ, महा बिकराल यमदूत सों दिखाइये। वोही सुत "नारायण" नाम जो कृपा कै दियो, लियो सो पुकारि सुर आरत सुनाइये ॥ सुनत ही पारषद आए वोही ठौर दौर, तारि डारे पास कह्यौ धर्म्म समुझाइये। हरि लै विडारे जाइ पति पै पुकारे कहि "सुनो वज्रमारे! मत जावो हरि गाइये ॥ २४ ॥

स्त्री पुत्र के स्नेह रूप महा मोह जाल में लपटा पड़ा था,

इतने में उसका मरण काल आगया । महा भयानक यमदूत मुगदर (मुद्गर) फांसी लिये हुए देख पड़े । तब अतिशय मोह तथा महाभय से उस सुत का कि जिसको सन्तों ने कृपा करके दिया था और नाम भी रख दिया था बड़े आर्त और उच्चस्वर से "नारायण !" ऐसा पुकारा ।

भक्तरक्षार्थ जो भगवंत पार्षद जगत में विचरते रहते हैं वे नारायण शब्द आर्त्तनांद से सुन्तेही उसी ठिकाने दौड़ के आही तो पहुंचे । और उस बेचारे की फांसी को तोड़ के उसको छुड़ा ही लिया ॥

यमदूतों ने पापी की सहायता का कारण पूछा तब पार्षदों ने बिवशहु भगवन्नामोच्चारण का माहात्म्य कहिके उनको हराया ही नहीं बरंच भगा भी दिया उन्ने जाके अपने पति यमराज से पुकार किया । यमराज ने सब व्यवस्था सुन के उन दूतों को डाट बताया कि "अरे! तुम सबों पर बज्र पड़े, मेरी बात समझ के चित्त में दृढ़ गहि रक्खो कि कोई कहीं कैसाहू पापी क्यों न हो परन्तु वह यदि किसी प्रकार से भगवन्नामोच्चारण करे तहां तुम भूलके भी कदापि मत जाव वहां तो तुम्हारा वा मेरा भी कोई प्रयोजन ही नहीं। उनको तो भगवद्भक्तही जाना" ॥ प्रियपाठक! नाम का माहात्म्य तनक चित्त लगा के देखिये ॥

(चौ०) विघशहु जासु नाम नर कहहीं ।
जन्म अनेक सँचित अघ दहहीं ॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं ।
ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥

(छप्पै)

मो चित वृति नित तहँ रहौ जहँ नारायण पद पारषद ॥ विषवकसेन, जय, विजय, प्रबल बल, मङ्गल कारी। नन्द, सुनन्द, सुभद्र, भद्र, जग आमय हारी चण्ड, प्रचण्ड, विनीत, कुमुद, कुमुदाक्ष, करुणालय । शील, सुशील, सुषेन, भाव भक्तन प्रतिपालय ॥ लक्ष्मी-पति प्रीणन प्रवीन भजनानन्द भक्तन सुहृद । मो चित वृति नित तहँ रहौ जहँ, "नारायण पद पारषद" ॥४॥ (८)

वार्त्तिक तिलक ।

मेरे चित्त की वृत्ति सर्वदा तहां रहै कि जहां श्री नारायण जी के पदपंकज सेवी पारषद हों, किजो मंगल के करने वाले; संसार रूपी महा रोग के हरने वाले; करुणा के स्थान; विनीत; और भावयुक्त भक्तों के प्रति-पालक हैं; जो श्रीलक्ष्मीपतिजी की सेवा करके

उनको प्रसन्न करने में परम प्रवीण हैं; तथा जो भजनानन्द भक्तों की हद्द हैं; अर्थात सब में श्रेष्ठ सीमा रूप हैं।

(१) श्रीविष्वकसेन जी,	(९) श्रीभद्र जी,
(२) श्रीसुषेन जी,	(१०) श्री सुभद्र जी,
(३) श्री जय जी,	(११) श्रीचण्ड जी,
(४) श्री विजय जी,	(१२) श्रीप्रचण्ड जी,
(५) श्री बल जी,	(१३) श्रीकुमुद जी,
(६) श्रीप्रबल जी,	(१४) श्रीकुमुदाक्ष जी,
(७) श्रीनन्द जी,	(१५) श्रीशील जी,
(८) श्रीसुनन्द जी,	(१६) श्रीसुशील जी ॥

☞ किसी किसी पोथी में, इस छप्पय के पाठ में "पद" शब्द नहीं ही है।

श्री यमराज (श्रीधर्म्मराज) महा भागवत की, श्री रामनाम माहात्म्य वर्णन द्वारा श्रीभगवद्भक्ति, अजामिल के प्रसंग में वर्णन हो ही चुकी है ॥

टीका। कवित्त।

पारषद मुख्य कहे सोरह सुभाव सिद्धि सेवाही की ऋद्धि हिये राखी बहु जोरि कै। श्री पति नारायण के प्रीणन प्रवीण महा, ध्यान करै जन पालैं भाव दृग कोरि कै॥ सनकादि दियो शाप, प्रेरि कै दिवायो आप, प्रगट ह्वै कह्यौ पियो सुधा जिमि घोरि कै॥ गही प्रतिकूलताई जो पै वही मन भाई, याते रीति हद गाई करी रङ्ग बोरि कै ॥ २५ ॥

वार्तिक तिलक ।

श्रीनाभाजी ने जो सोलह मुख्य पारषद कहे सो उनको स्वाभाविक सिद्ध अर्थात् नित्यमुक्त जानिये, सो प्रभु की सेवा रूपा सम्पत्ति को एकट्ठी करके अपने अपने हृदय में रख ली हैं; श्रीलक्ष्मीपतिनारायण जी की प्रसन्नकारिणी सेवा में महा प्रवीण हैं; और सर्वदा उन्ही के ध्यान में मग्न रहते हैं; समस्त भगवद्भक्त जनों का पालन यों करते हैं कि जैसे पलक नेत्रगोलकों की रक्षा करते हैं ।

और तत्सुखी आज्ञाकारी यहां तक हैं कि उनमें श्री जय जी और श्री विजय जी को जब श्री प्रभु की प्रेरणा से सनकादिकों ने तीन जन्म तक असुर होने का शाप दे दिया (पृष्ठ ८७) और उसी समय शीलसिन्धु श्री-नारायण जी प्रगट हो के बोले कि "इस शाप को मेरी ही इच्छा समझ के सुधापान सरिस ग्रहण करो," तब इतना सुन कहा कि "जो यह आप की इच्छा है तो हम को सहस्र सुधा समान है" ॥ इससे सेवक धर्म की रीति "हद" (सीमा) है, क्योंकि नित्य सेवा का सुख छोड़ के आपकी आज्ञा से, प्रसन्नतापूर्वक, प्रतिकूलता को अर्थात असुर भाव को अङ्गीकार किया । ऐसे रँगीले सेवक हैं ।

(छप्पै)

हरि वल्लभ सब प्रार्थों, जिन चरण रेणु आशा धरी ॥ कमला, गरुड़, सुनन्द

आदि षोडश प्रभु पद रति । हनुमन्त, जामवन्त, सुग्रीव, विभीषण, शवरी, खगपति ॥ ध्रुव, उद्धव, अम्बरीष, विदुर, अक्रूर, सुदामा । चन्द्रहास, चित्रकेतु, ग्राह, गज, पाण्डव नामा ॥ कौषारव, कुन्ती, बधू, पट ऐंचत लज्जा हरी । हरि वल्लभ सब प्रार्थौं, जिन चरण रेणु आसा धरी ॥ ५ ॥ (९)

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीहरि के समस्त परम प्रिय श्रीप्रभुपदप्रीतिपरायण भक्तों की प्रार्थना करता हूं कि जिन्हके चरण रज कण की आसरा संसार सागर के तरने के हेतु अपने हृदय में रक्खे हुआ हूं—

(१)श्रीलक्ष्मी जी(२)श्रीगरुड़जी (३) श्रीसुनन्द आदि (पृष्ठ ९६ और ९७) सोलहो पारषद (४) श्रीराम दासाधिपति कपीन्द्र श्रीहनुमन्त जी (५) श्रीजामवन्त जी (६) श्रीरामसखा श्रीसुग्रीव जी (७) श्रीविभीषण जी (८) श्रीशवरी जी (९) खगपति श्रीजटायू जी (१०) श्रीध्रुव जी (११) श्रीउद्धव जी (१२) श्रीअम्बरीष जी (१३) श्रीविदुर जी (१४) श्रीअक्रूर जी (१५) श्रीसुदामा जी (१६) श्रीचन्द्रहास जी (१७) श्रीचित्रकेतु जी (१८) गजराज (१९) ग्राह (२०) पाण्डव [१ श्रीयुधिष्ठिर जी

२ श्रीअर्जुनजी ३ भीमसेन जी ४ नकुल जी ५ सहदेव जी]
(२१) श्रीमैत्रेय मुनि जी (२२) श्रीकुन्ती जी (२३) श्री कुन्तीबधू जी जिनकी लज्जा दुःशासन के पट छीनते समय श्री प्रभु ने रक्खी है सो अर्थात् श्रीद्रौपदी जी ॥

टीका । कवित्त ।

हरि के जे बल्लभ हैं दुर्लभ भुवन मांझ तिनही की पद रेणु आसा जिय करी है । योगी, यती, तपी, तासों मेरो कछु काज नाहिं प्रीति परतीति रीति मेरी मति हरी है ॥ कमला, गरुड़, जाम्बवान, सुग्रीव, आदि, सबै स्वादरूप कथा पोथिन में धरी है । प्रभु सौं सचाई जग कीरति चलाई अति मेरे मन भाई सुख दाई रस भरी है ॥ २६ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीहरिके बल्लभ जगत में परम दुर्लभ हैं, सो मैंने उन्ही के पदरज रेणु की आसा की है । और कोरे योगी यती तपस्वी लोगों से मुझे कुछ कार्य्य नहीं है; मेरी मति को तो श्रीभगवत के प्यारों की "प्रीति" "प्रतीति" और "रीति" ने ही हर ली है । पूर्व कथित भक्तों में, श्रीलक्ष्मी जी, श्रीगरुड़ जी, श्री जामवन्त जी, श्रीसुग्रीवजी, आदिकों की भक्तिरसास्वादरूपा कथाएं तो पुराणों में प्रसिद्ध ही हैं, जिन्होंने प्रभु से सच्ची प्रीति करके जगत में अपनी कीर्त्तियां फैलाई हैं, और मुझे अत्यन्त ही भली लगी हैं क्योंकि रसीली तथा सुखदाई हैं॥

सोलहो पारषद् तथा पांचो पाञ्चो समेत ४२ (बयालीस) हरि-वल्लभों के नाम इस (पांचवें) छप्पय में हैं ॥

(चौ०) वन्दनीय पद पंकज तिन्ह के ।
सियपियप्रिय, प्रिय सियपिय जिन्ह के ॥

श्री लक्ष्मी जी ।

जग जननी श्री लक्ष्मी जी महारानी तथा श्री मन्नारायण जी, गिरा अर्थ जल वीचि सम वास्तव में एकही हैं । भक्तों के हेतु युगल मूर्त्ति से प्रगट हैं। वस्तुतः जो यह हैं सो वह और जो वह हैं सो यह ॥ भगवत आपही, श्री लक्ष्मी रूप से, जगत को उत्पन्न करके, संरक्षण पालन करि भुक्ति, मुक्ति, भक्ति, प्रभु मंत्र नेम प्रेम दे के जीवों को श्रीप्रभु समीप निवासी करते हैं ॥ इसी से श्रीलक्ष्मी जी भक्तिमार्ग "श्री संप्रदाय" की परमाचार्य्य आदि भक्त रूपा श्रीहरि-वल्लभा हैं॥ जितने वेद पुराण भागवत इतिहास और सद्ग्रन्थ हैं, सब के सब युगल सरकार की ही लीला यश चरित्र को तो वर्णन करते हुए "नेति नेति" पुकारते हैं ॥ श्री कृपा की जय जय जय ॥

(श्लोक) या देवी सर्व भूतेषु भक्ति रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥

श्री पार्षद ।

भगवत के प्रमुख पार्षद जो सोलह [१६] हैं श्री

"सुनन्द, प्रमुख, तिनका वर्णन पृष्ठ ९६ तथा पृष्ठ ९८ में कुछ हो ही चुका है; और इनकी कृपा अजामिल के प्रसङ्ग में भी विदित ही है। भक्तों के रक्षक हैं, इनकी कृपा कौन वर्णन कर सकता है॥ यहां श्री नाभाजी स्वामी ने इनकी प्रार्थना" हरि वल्लभों "में भी पुनः की है॥

श्री गरुड़ जी।

श्री हरिवल्लभ (श्री गरुड़) जी भी भगवत पार्षद हैं, प्रभु के वाहन हैं "श्रीहनुमान गरुड़ देव की जय" यह तो सबको प्रसिद्ध है ही॥

(चौ०) गरुड़ महा ज्ञानी गुण रासी।
हरि सेवक अति निकट निवासी॥

आप अनेक भाव रूप, अर्थात् दास, सखा, वाहन, आसन, ध्वजा, वितान, व्यजन, हो के श्री प्रभु की सेवा करते हैं और सदा सन्मुख खड़े रहते हैं॥

"श्री यामुना चार्य्य स्वामी जी" ने तो श्रीगरुड़ जी को वेद त्रयी रूपही कहा है, जिन्ह के पक्षों से "सामवेद" उच्चारण होता है, सो प्रभु चढ़े हुए सप्रेम सुनते हैं॥

श्री कांक "भुशुण्डि" जी से आपने "श्री राम चरित मानस" जिस प्रेम से श्रवण किया उसका कहना ही क्या।

(चौ०) सुनि शुभ राम कथा खग नाहा॥ विगत मोह मन परम उछाहा॥ सुनि भुशुण्डि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए॥ नयन नीर

मन अति हरषाना । श्री रघुपति प्रताप उर आना ॥ पुनि पुनि काग चरण सिर नावा । जानि राम सम प्रेम बढ़ाया ॥ (दो०) काक चरण सिर नाइ करि, प्रेम सहित मति धीर । गरुड़ गएउ बैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुबीर ॥

और इनका बल पराक्रम भक्ति चरित्र के वर्णन में तो महाभारत येक "सौपर्ण" पर्व का पर्व ही प्रसिद्ध है ॥

श्रीबाल्मीकि युद्ध काण्ड में श्री बैनतेय जी ने निज बल्लभता श्री सीता कान्त जी से स्वयं कही है कि "हे श्री ककुत्स्थ कुल भूषण जी ! मैं आप का सखा हूं परमप्रिय वाहर का विचरने वाला आप के प्राण हूं यह नरनाट्य नाग पास बंधन लीला सुन के निज सख्य सहायता निवेदन करने को आया हूं ॥

श्री हनुमान जी ।

(चौ०) महावीर विनवौं हनुमाना ।
राम जासु यश आपु बखाना ॥

टीका । कवित्त ।

रतन अपार सार सागर उधार किये लिये हित चायके बनाइ माला करी है । सब सुख साज रघुनाथ महा राज जू को, भक्ति सों, विभीषण जू आनि भेंट धरी है ॥ सभाही की चाह अवगाह हनुमान गरे डारि दई सुधि भई, मति अरवरी है । राम बिन काम कौन,

फोरि मणि दीन्हें डारि, खोलि तुचा नामही दिखायो; बुद्धि हरी है ॥ २७ ॥

वार्त्तिक तिलक।

सागर से निकाले हुए जिन रत्नों में अपार सार अर्थात् अति प्रकाश युत अमूल्यता थी, वे रत्न तीनों लोकों के देव भूप नागों के मस्तकों के महामुख्य भूषण थे; तिनको जीत के रावण ने बड़े चाव से अपने कोश में रक्खा था। उन्ही रत्नों को बड़े हित चाह से श्री विभीषण जी ने माला बना के, सब सुखसाजयुक्त महाराज श्रीरघुनाथ जी को भक्ति पूर्वक भेंट दी ॥

उस महा मनोहर माला को देख के सभा भर के लोगों को उसकी अथाह (अवगाह) चाह उत्पन्न हुई। श्रीजानकी जीवन जी ने देखा कि इस माला ने तो हमारे सब निष्काम भक्तों के मन को चाह युक्त कर दिया; इससे सब को चाह रहित करने के निमित्त श्री-हनुमान जी के गले में वह माला पहरा दी ॥ श्री-मारुती जी तो प्रभु के रूपअनूप के अवलोकन से छके अपनपौ विसारे हुए थेही माला कण्ठ में पड़ते ही मणियों के सौन्दर्य्य को देखकर और उसमें कहीं श्री-राम नाम न देख कर आप की मति अकुला उठी और विचार किया "कदाचित इसके भीतर श्री नाम हो" इस हेतु से उस माला की एक मणि को फोर के आपने देखा तो भीतर भी श्री नाम न पाया। तब यह विचार

किया कि "यह तो श्री राम रहित है" उस मणि को डाल दिया; इसी प्रकार से एक एक मणि को फोर फोर देख देख फेंकने लगे। यह कौतुक देख के सब सभा चकित हुई और श्रीविभीषण जी बोल ही उठे "कपिवर जी! आप इन अमूल्य मणियों को फोर फोर फेंकते क्यों हैं? कपि जाति स्वभाव से ही, वा इस्में कोई हेतु भी है?"

तब श्रीसीताराम सम्पत्ति के धनिक श्री अंजनी नन्दन जी ने उत्तर दिया कि "श्रीरामनाम से हीन ये मणि मेरे काम के नहीं" यह सुन श्रीविभीषण जी-ने पुनः पूछा कि आप के शरीर में भी तो श्री राम नाम दीखता नहीं, फिर उसे क्यों रक्खे हुए हैं? इतना सुनतेही आपने नखों से अपने दिव्य विग्रह की त्वचा खोल के दिखाया तो तेजोमय सूक्ष्म शब्द युत सर्वाङ्ग में श्रीरामनाम सब को देख पड़े॥ और सब की मति आश्चर्य्य मग्न में हो गई॥

देखिए, इस कौतुक से श्री कपिकुलकेतु जी ने सवौं को परम बैराग्य युत निष्काम श्रीरामानुराग का उपदेश किस प्रकार दृढ़ाया। भला इन्ह के ज्ञान बैराग्यादि दिव्य रत्नों से पूर्ण विमल भक्ति जल से भरे हुए परम प्रेमरूपी सिंधुकी थाह किसको मिल सक्ती है? और श्री सीताराम सेवा में ऐसा अनूठा अनुराग किस का होगा, कि तीन रूप से सेवा सुख

लेते हैं (१) "श्रीरघुकुलकुमार चारुशीलमणि जी" हो के सख्य सेवा सुख लूटते हैं; (२) "श्रीनिमिकुल कुमारी चारुशीला जी" हो के सखी सेवा सुख अनुभव करते हैं; (३) एवं "श्री अंजनीनन्दन" रूप से दिव्यदम्पती जी के दास्य सेवा का सुख लेते हैं। इस कपि रूप की प्रीति भक्ति सेवा तो लोक प्रसिद्ध है कि जिसके वश अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीजानकी जीवन जी आप तो ऋणी कहाए और सेवा धर्म धुरंधर श्री हनुमन्त जी को धनी बनाया॥

(चौ०) "सुनु सत तोहिँ उरिन मैं नाहीं।
देखउँ करि विचार मन माहीं॥
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सन्मुख होइ न सकत मन मोरा॥

(चौ०) हनूमान सम नहिँ बड़ भागी। नहिँ कोउ रामचरण अनुरागी॥ गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥"

श्री हनुमान जी के यश को बारबार सुनते भी हैं॥

(दो०) किमि बरनौं हनुमन्त की कायकान्ति कमनीय।
रोम रोम जाके सदा राम नाम रमनीय॥१॥

(विनय) जाके गति है हनुमान की। ताकी पयज पूजि आई यह रेखा कुलिश पखान की॥ अघटित घटन सुघट बिघटन ऐसी बिरुदावली नहीं आनकी॥ सुमिरत संकट सोच विमोचन मूरति मोद निधान की। तापर सानुकल गिरिजा हर लखन राम श्री जानकी। तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि खानि सकल कल्यान की॥

(दोहा)

जय जय कपि श्री राम प्रिय! धन्य धन्य हनुमन्त। नमोनमो श्री मारुती! वलिहारी बलवन्त ॥१॥
सिया दुलारे, पवनसुत! मम गुरु, अंजनि पूत। सतसंगति, निज चरण रति, देहु, सीयपियदूत ॥ २ ॥
श्रीसियसियपिय पद कमल अविरल अमल सनेहु। युगल चरण कैंकर्य्य पुनि मोहि कृपा करि देहु ॥ ३ ॥
"बीरकला श्रीमारुती"! तुमहि निहोरि निहोरि। रूप कला सियचेरि लघु विनय करति करजोरि ॥ ४ ॥

श्री जाम्बवान जी।

श्री जाम्बवान जी, श्री ब्रह्मा जी के अवतार हैं। श्री प्रभु तथा सुग्रीव जी के मन्त्रीवर हैं। लंका के युद्ध में बुढ़ापे में भी बड़ा पराक्रम ऋक्षपतिजी का प्रसिद्ध है। और युवावस्था में तो—

(दो०) "बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाइ। उभय घड़ी महँ दीन्ह मैं, सात प्रदक्षिण धाइ ॥"

श्रीमद् भागवत में वर्णित है कि इन ने बहुत बूढ़ेपन में भी, श्री कृष्ण भगवान् के साथ बड़ा पराक्रम दिखाया, जब तक कि इन ने आप को पहिचाना न था॥ फिर तो अपनी कन्यारत्न "जाम्बवती" को भगवत को प्रदान कर दिया ॥

श्री सुग्रीव जी।

श्री सुग्रीव जी, श्री सूर्य्य भगवान् के पुत्र हैं। श्री सुकण्ठ जी से प्रभु ने श्री अग्निदेव को साक्षी करके मित्रता की। आप ने जैसी सख्यता सम्पत्ति आप को प्रदान किया और निबाहा, सो श्री बाल्मीकीय रामायण ही के देखने वालों को विदित है।

कपीश्वर जी सब ऋक्षों और कपियों के राजा थे। और श्री जानकीजीवन जी के तो प्राण से भी प्रिय "पंचम भ्राता" ही थे॥

श्री विभीषण जी।

श्रीसीताराम भक्त लंकेश श्रीविभीषणजी की भक्ति तथा शरणागति को वर्णन कर सके ऐसा कौन जन है? तथापि कुछ थोड़ा सा कहाही जाता है, सो चित्त लगाके सुनिये। देखिये कि प्रात समय इनका नाम लेना बड़ाही मंगल दायक है। और, श्री रामायण जी में जो इनकी कथा है, सो तो प्रसिद्ध है ही, एक नवीन इतिहास यों है—

टीका। कवित्त।

भक्ति जो विभीषण की कहै ऐसो कौन जन, ऐपै कछु कही जाति सुनो चित लाइ कै। चलत जहाज परी अटकि; विचार कियो, कोऊ अंगहीन नर दियो लै बहाइ कै॥ जाइ लग्यो टापू ताहि राक्षसनि मोद

लियो, मोद भरि, राजा पास गए किलकाइ कै। देखत सिंहासन ते कूदि परे, नैन भरे, "याही के आकार राम देखे भाग पाइकै" ॥ २८ ॥

वार्त्तिक तिलक।

एक वणिक की जहाज चली जाती थी। किसी कारण से अटक गई; उसने बहुत यत्न किये पर नहीं चली। तब वणिक ने ऐसा विचार करके कि समुद्र के देवता ने रोका है, उसके लिये किसी मनुष्य को बलि की भांति समुद्र में गिरा दिया॥ वह मनुष्य श्रीराम कृपा से मरा नहीं, वरंच "लंका टापू" के तीर पर जा लगा। उसे राक्षसों ने देखा; और वे बड़े आनन्द से उसको अपने गोद में उठा के, बहुत खिल-खिलाते हुए, राक्षसेन्द्र "श्रीविभीषण जी" के समीप ले गए।

उस समय श्रीविभीषण जी श्रीरामविरह अनुराग में छके प्रभु का ध्यान करते हुए बैठे थे; आप इस मनुष्य को देखतेही सिंहासन से कूद पड़े; क्योंकि मनुष्य रूप का दरशन आपको एक उद्दीपन ही हो-गया। ऐसा विचारने लगे कि "इसी की नाईं मेरे स्वामी नराकार विग्रह श्री राम जी हैं, इनके दरशन इस समय बड़े भाग्य से पाये" इस भाव से नयनों से प्रेमाश्रु बह चले॥

टीका। कवित्त।

रचि सो सिंहासन पै लै बैठाए ताही छन, राक्षसन रीझि देत मानि शुभघरी है। चाहत मुखारविन्द, अति ही अनन्द भरि, ढरकत नैन नीर, टेकि ठाढ़ो छरी है॥ तऊ न प्रसन्न होत, छन छन छीन ज्योति, हूजिये कृपाल, मति मेरी अति हरी है। "करी सिन्धु पार, मेरे यही सुख सार"; दियो रतन अपार, लाये वाही ठौर फेरी है॥ २९॥

वार्त्तिक तिलक।

दिव्य वस्त्र, चन्दन, मणि और सुवर्ण के भूषणों से, उनके शरीर की रचना शृङ्गार करके सिंहासन पर बैठाय धूप दीप, नैवेद्य, आरती के अनन्तर भूषण वस्त्रादि न्योछावर करके, राक्षसों को रीझ पारितोषिक दिये॥ उस घड़ी को अति शुभदायक माना। और, श्री प्रभु का भाव करके सुवर्ण की छड़ी लेके प्रतीहार की भांति सम्मुख खड़े हो, उनके मुखारविन्द का सप्रेम दरशन करने लगे और आपके नेत्रों से आनन्द का जल चलने लगा; तथापि उस मनुष्य के मुख में प्रसन्नता का लेश भी न दीख पड़ा, वरंच क्षण क्षण प्रति उसकी चेतना (चेष्टा) क्षीण ही होती जाती थी उसकी आंखों से आंसू बहते थे, और उसके मन में यह भय बढ़ता जाता था कि इन सब सत्कार पूर्वक, मुझे ये सब बलि दे देंगे॥

श्रीविभीषण जी ने प्रार्थना की कि "इस दास पर कृपा करके कुछ आज्ञा दीजे, क्योंकि आपको उदास देख के मेरी मति सभीत हो रही है" ॥ तब वे बोले कि "मुझे समुद्र पार उतार दीजे, मुझको तो इसी में परमसुख होगा" ॥

तब, श्री विभीषण जी बहुत रत्न देके फिर उसी ठौर सिन्धुतीर उनको ले आए ॥

टीका। कवित्त।

"राम" नाम लिखि, सीस मध्य धरि दियो; "याको यही जल पार करै," भाव सांचो पायो है। ताही ठौर बैठ्यो, मानो नयो और रूप भयो, गयो जो जहाज सोई फिरि करि आयो है ॥ लियो पहिचान, पूछ्यो सब, सो बखान किया, हियो हुलसायो, सुनि, विनै कै चढ़ायो है। पर्‌यो नीर कूदि, नेकु पांय न परस कर्‌यो, हर्‌यो मन देखि, 'रघुनाथ नाम' भायो है ॥ ३० ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीविभीषण जी ने "श्री राम नाम" लिख के उनके मस्तक पर श्रीकरकमल से भाव पूर्वक रख के वस्त्र से बांध दिया; और कहा कि "इस 'श्रीराम' नाम के प्रताप से लोग संसारसागर से पार हो जाते हैं, सो इस समुद्र के जल को तो आप बिना प्रयास ही पार हो जाइयेगा"

उनके सच्चे भाव और विश्वास से वह मनुष्य जल में स्थल की नाईं चल के उसी ठौर पहुंच गया कि जहां संयोग वश वही जहाज़ लौट के आ लगा था॥ उन लोगों ने इसको देखके पहिचाना और उसके शरीरके तेज तथा अवस्था को दिव्य पाया। पूछने पर उसने अपनी सब कथा और श्रीविभीषण जी की भक्ति कह सुनाई। सुनके सब को अति आनन्द हुआ; बड़े विनय से उसको जहाज़ पर चढ़ा के क्षमा मांगीं। प्रसन्न होके श्रीराम नाम का प्रभाव उन सबों से कहा वरंच समुद्र में कूद के दिखा दिया कि जल में उसका पांव तक भी भीगा नहीं।

अथवा (ऐसा भी कहते हैं कि), उसके पास अनमोल रत्नों की गठरी देख कर नौकापति को लोभ प्रबल हुआ; उसके ये ढंग देख के उसकी माया से बचने के निमित्त यह मनुष्य पुनि जल में कूद पड़ा और यों चल दिया जैसे कोई सूखी धरती पर सहज ही में चले॥

इस प्रभाव को देख के, "श्रीसीताराम" नाम में सबों को श्रद्धा और प्रतीति उपजी, और अति प्रीति पूर्वक जप के सब के सब संसार के पार हो गए॥

——:o:——

देवी श्री सवरी जी।

समस्त प्रेमी भक्तों में शिरोमणि रूपा श्री "सवरी"

जी, किसी हेतु से सवर (भिल्ल) जाति में उत्पन्न हुईं; परन्तु बालपन से ही इनकी दशा तथा मति लोक से विलक्षण ही थी। जब विवाह योग्य अवस्था इनकी हुई, तब माता पिता उसके प्रबन्ध में उद्यत हुए और सम्बन्धी लोगों के भक्षण के लिये, बहुत से जीव, एकट्ठे किये। इन्हों ने विचारा कि "अोह! मेरे निमित्त इतने जीवों का बध होगा! धिक् इस लोक के प्रपंच को है"। रात्रि में आपने उन सब जीवों को छोड़ दिया और उसी रात आप भी वहां से चल के पंपासर के पास जा छुपीं, और वहीं बन के फल मूल से निर्वाह करती हुई दिन बिताने लगीं॥

टीका। कवित्त।

बन में रहति, नाम "सवरी" कहत सब, चाहत टहल साधु, तनु न्यूनताई है। रजनी के शेष, ऋषि आश्रम प्रवेश करि, लकरीन बोझ धरि आवै, मन भाई है॥ न्हाइबे को मग झारि, कांकरनि बीनिडारि, बेगि उठि जाइ, नेकु देति न लखाई है। उठत सबारें, कहैं "कौन धौ बहारि गयो", भयो हिये शोच, "कोउ बड़ो सुखदाई है"॥ ३१॥

वार्त्तिक तिलक।

उसी बन में रहती थीं; इन को सब "सवरी" ही कहते थे॥ इन्हें संतो की सेवा की चाह विशेष थी, परंतु अपनी नीच जाति जान के साधुवों के समीप नहीं

जाती थीं। तथापि बिना सेवा किये नहीं ही रहा गया, तब कुछ रात रहते श्री मतंगादि ऋषि जनों के आश्रम में लकड़ियों के बोझ रख आया करती थीं; मन में इस्से सुख मानती थीं; और स्नान के मार्ग की कंकड़ियां भी रात्रि ही में बहार के चली आया करती थीं, जिस्में कोई देख न लेवे। श्री राम भक्त ऋषि-जन प्रभात उठके इस टहल को देख विचारते कि "मार्ग को झाड़ बहार के लकड़ियां रख जाने वाला सुखदायक कौन है?" ॥

टीका। कवित्त।

बड़ेई असंग वे "मतंग" रस रंग भरे, धरे देखि बोझ, कह्यो "कौन चोर आयो है? करै नित चोरी; अहो! गहो वाहि एक दिन; बिना पाए, प्रीति बाकी मन भरमायो है" ॥ बैठे निशि चौकी देत शिष्य सब सावधान; आइ गई; गहि लई; कांपै, तनु नायो है। देखत ही ऋषी जल धारा बही नैनन ते, बैनन सों कह्यो जात, कहा कछु पायो है ॥ ३२ ॥

वार्त्तिक तिलक।

सब ऋषियों में बड़ेही असंग श्री राम रंग से भरे श्री मतङ्गजी लकड़ियों का बोझ धरा देख के बोले कि "हमारे सुकृत का चोर यह कौन आता है? जो नित्य ही चोरी से सेवा करके चला जाता है। उस प्रीतिवान को बिना देखे उस की प्रीति ने मेरे मन

को चपल कर रक्खा है। रात्रि में जाग के उस्को पकड़ो" ॥ रात को शिष्य लोगों ने सावधान रहके चौकी देके उस्को पकड़ा। उस्से शिष्यों ने पूछा कि तू ने यहां लकड़ियां पहुंचाने के लिये किसी से कुछ पाया है?

अति भय से वह कांपती हुई पांव पर गिर पड़ी। देखतेही श्रीमतंग जी के नेत्रों से प्रेमानन्दजल की धारा चलने लगी। और ऐसे अकथ आनन्द में मग्न हो गए मानो कोई महा अलभ्य वस्तु पाया है॥

टीका। कवित्त।

डीठी हू न सोंही होत, मानि तन गोत छोत, परी जाय शोच सोत, कैसेकै निकारियै। भक्ति को प्रताप ऋषि जानत निपट नीके "कैऊ कोटि विप्रताई यापै वारिडारियै" ॥ दियो बास आश्रम में, श्रवण में नाम दियो; कियो सुनि रोष सबै, कीनी पांति न्यारियै। सवरी सों कह्यो "तुम रामदरशन करो, मैं तो परलोक जात, आज्ञा प्रभु पारियै" ॥ ३३ ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीसवरी जी की तो दृष्टि भी मुनिवर जी के सामने नहीं होती थी, अपनी जाति को अति नीच मान के सोच रूपी प्रवाह में पड़ गईं। इधर श्रीमतङ्ग मुनिजी शोच विचार के प्रवाह में पड़े कि इस्को सोच के सोत (धारा) से कैसे निकालूं? क्योंकि ऋषी-

ग्वर जी "श्रीरामभक्ति जी" का प्रताप भले प्रकार जान्ते थे । शिष्यों से कहने लगे कि "यह जाति की तो नीच है सही, परन्तु इसकी भक्ति पर तो कई कोटि ब्राह्मणाभिमान को न्योछावर करना योग्य है" ॥ निदान, सवरी जी को अपने आश्रमही में निवास देकरके महामन्त्र श्रीसीताराम नाम श्रवणमें सुना दिया ॥

इस वार्त्ताको सुनके औरसब मुनि जनोंने अति रोष करके आपको अपनी ज्ञाति पंक्ति से न्यारा कर दिया ।

इस बात का कुछ हर्ष विषाद श्रीराम भक्त "मतङ्ग" मुनि जी को लेश भी न हुआ । श्रीसवरी जी सेवा में तत्पर हो के रहने लगीं ॥ कुछ काल में श्रीमतङ्ग जी के देह त्याग का समय आपहुँचा; श्रीसवरी जी से आपने कहा कि "मुझे तो अब इस लोक में रहने की प्रभु की आज्ञा नहीं है, श्रीरामधाम को जाता हूं; परन्तु तुम यहां ही बनी रहो" । इतना सुन श्रीसवरी जी अत्यन्त व्याकुल हुई । आपने समझाके कहा कि "मेरे इस आश्रम में 'परब्रह्म परमात्मा श्रीरामचन्द्र जी' अपने अनुज 'श्रीलक्ष्मण' जी के सहित आवेंगे, तू उनका दरशन पूजन सप्रेम करना । तब श्रीरामधाम को आना ॥ " ऐसा समझा के श्रीमतङ्ग जी परमधाम को पधारे ॥

टीका । कवित्त ।

गुरू के वियोग हिये दारुण लै शोक दियो, जियो

नहीं जात; तऊ राम आसा लागी है। न्हाइबे कों बाट निशि जात ही बहारि सब, भई यों अबार ऋषि देखि व्यथा पागी है॥ छुयो गयो नेकु कहूं, खीजत अनेक भांति; करिकै विवेक गयो न्हान; यह भागी है। जल सों रुधिर भयो, नाना कृमि भरि गयो, नयो पायो शोच, तौहू जानै न अभागी है॥ ३४॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीसवरी जी को श्री गुरु वियोग से बड़ाही दुसह दुःख हुआ कि जिस्में वह प्राण को नहीं रक्खा चाहती थीं; पर श्रीराम रूप अनूप के दरशन की लालसा ने प्राणों को निकलने न दिया॥ आप मुनियों के स्नान के पथ को रात ही को झार आया करती थीं।

एक दिन कुछ बिलम्ब हो गया; प्रतिपक्षी एक मुनि ने श्रीसवरी जी को देख लिया, इस्से श्रीसवरी जी भय से व्यथित हुईं। वन का मार्ग पतला तो होता ही है, मुनि, किंचित छू जाने से, क्रोध करके अनेक दुर्वचन बोले॥

अपने मन में विचार के उस मुनि ने फिर जाके स्नान किया। और श्री सवरी जी भाग के अपनी कुटी में चली आईं॥ मुनि जब स्नान करने लगे, तो श्रीरामभक्त सवरी जी के प्रति अपराध से, जल रुधिर हो गया, और देखतेही देखते उस सर में कीड़े भी पड़ गए। मुनि को यह एक नया सोच हुआ

तथापि इस बात को तो न समझे कि 'श्री सवरीजीको नीच मान के दुर्वचन जो कहे, और उनके स्पर्स के अनन्तर पुनः स्नान किया, तिसी से इस सर का जल रुधिर हो गया;' किन्तु भक्ति भाग्यहीन मुनि ने उलटे ऐसा समझा कि "सवरी ही के स्पर्स के दोष से यह जल बिगड़ गया है" ॥

टीका कवित्त ।

लावै बन बेर, लागी राम को अवसेर भल, चाखै* धरिराखै फिर, मीठे उन जोग हैं। मारग में जाइ, रहै लोचन बिछाइ, कभूं आवैं रघुराई, दृग पावैं निज भोग हैं ॥ ऐसे ही बहुत दिन बीते मग जोहत ही, आइ गए औचक सो; मिटे सब सोग हैं। ऐपै तनु नूनताई आई सुधि, छिपि जाई; पूछैं आप "सवरी कहां ?" ठाढ़े सब लोग हैं ॥ ३५ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीसवरी जी के मन में श्री राम जी की अति अवसेर थी अर्थात् प्रभु के आने के सोच सन्देह में मग्न हो रही थीं; सो बन के बेर आदिक फल लाकर चखती थीं* और मीठे प्रभु के योग्य जान कर रख छोड़तीथीं ॥

*इसका अर्थ कोईएक महात्मा ऐसा बताते हैं कि चखने पर जिस वृक्ष के फल मीठे पाती थीं उसी वृक्ष के फल प्रभु के योग्य जान तोड़ के रख छोड़ती थीं ॥

प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा में अपनी आंखें बिछाए रहती थीं और अति उत्कण्ठा से ऐसा विचारा करती थीं कि" कब वह दिन आएगा ? कि जिस दिन श्रीरघुनन्दन लाल जी आवेंगे और उनके दरशन रूपी सुधा को मेरे नेत्र चखेंगे ॥"

प्रिय पाठक ! श्री शवरी जी का प्रेम अकथ अगाध है ॥ "गीतावली" में गोस्वामी श्री ६ तुलसी-दास जी ने भी कुछ गाया है ॥

"छन भवन, छन बाहर बिलोकति पंथ," इत्यादि ॥

इसीप्रकार मार्ग जोहते २ बहुत दिन व्यतीतहुए ॥ अवचकही एक दिन लालजी (प्रभु) आयही तो पहुँचे; सुन के सब शोक सन्देह जाते रहे; पर अपने शरीर की नीचता की सुधि आगई, और प्रेम की विचित्र विकलता से, आगे लेने को तो न बढ़ीं, वरंच छुप गईं ॥

प्रभु आके, बन बासी लोगों से पूछने लगे कि "वह सरस भक्तिवती सवरी कहां रहती है ?" ॥

टीका कबित्त।

पूछि पूछि आए तहां, स्योरीको अस्थान जहाँ, कहां वह भागवती ? देखौं द्रग प्यासे हैं। आइ गई आश्रम में; जानिकै पधारे आप, दूर ही ते साष्टाङ्ग करी चष भासे हैं॥ रवकि उठाइ लई, बिथा तनु दूरि गई, नई नीर भरी नैन, परे प्रेम पासे हैं। बैठे, सुख पाइ फल खाइ कै सराहे, वेइ क़ह्यौ "कहा कहौं मेरे मग दुख नासे हैं ॥ ३६ ॥

वार्त्तिक तिलक।

इस प्रकार पूछते २ जहां श्रीसवरी जी की कुटी थी तहां ही आके यह बात पूछी कि "हमारी वह परम भागवती शवरी कहां है ? हम उसको नयन भर देखा चाहते हैं, हमारे नेत्र उसके दरशन रूपी जल के प्यासे हो रहे हैं"। प्रीति पगे श्रीमुख बचनों को सुनके उनको अपनी नीचता का सोच मिट गया और यह देखा कि आश्रम में ही दोनों भाई कृपा करके आखड़े हैं; तब सन्मुख आके जहां से आपके दरशन पाए वहीं से प्रेम पूरित साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रभु ललक के आए और श्रीकरकमलों से आपने श्रीशवरी जी को उठा लिया। श्रीकरकंज के स्पर्श होसे वियोग की सब व्यथा जाती रही और नेत्रों से नवल प्रेम मय जल की झड़ी लग गई। क्योंकि इस समय इनके पौ बारह सरीखे प्रेम के पासे अनुकूल पड़ गए अथवा श्रीशवरी जी के नयन श्रीरामप्रेम पास में बँध गए॥

चरण धोके दोनों भाइयों को अनुराग रंजित आसन पर बैठाय फूलमाला पहिराय फलों को नवीन २ दोनाओं में करके आगे रक्खा। प्रभु उन फलों को खाते हुए बारम्बार उन के स्वाद की प्रशंसा, और शिव जी आदि उसके भाग्य की तथा प्रभु की भक्तवत्सलता की सराहना, करने लगे॥ और बोले कि क्या कहूं आज तुम ने मेरे मार्ग भर के परिश्रम दुःखों को मिटा के परम सुख दिया॥

टीका। कवित्त।

करत हैं सोच सब ऋषि बैठे आश्रम में, जल को बिगार! सो सुधार कैसे कीजिये? आवत सुने हैं बन पथ रघुनाथ कहूं; आवैं जब, कहैं "याको भेद कहि दीजिये"॥ इतनेही मांझ सुनी "सवरी के बिराजे आन" गयो अभिमान! चलो पग गहि लीजिये। आय, खुनसाय, कही "नीर कौ उपाय कहौ" "गहौ पग भीलिनी के छुए स्वच्छ भीजिये" ॥ ३७ ॥

वार्त्तिक तिलक।

उधर ऋषी लोग अपने आश्रमों में बैठे सोच रहे थे कि यह जल जो बिगड़ गया है सो इसकी शुद्धता किस प्रकार से की जावे। इतने में कोई बोल उठे कि सुनते हैं कि इस बन मार्ग से कहीं श्री रघुनाथ जी चले आते हैं; सो जब आवें तब इस्का हेतु तथा शुद्धि का उपाय आपही से पूछ लिया जायगा। ये बातें होही रही थीं कि उसी क्षण मुनियों ने सुना कि आप आही गए, शवरी के कुटी में बिराज रहे हैं॥

यह सुनते ही सभों के अभिमान जाते रहे और वे लोग बोले कि चलो उनके चरणों में दण्डवत प्रणाम करें। खुनसाए हुए आए और प्रभु से कहा कि हमारे स्नान पान का जल बिगड़ गया है इसके सुधरने का यत्न बता दीजिये।

इसके उत्तर में प्रभु ने कहा कि आप लोगों ने परम भागवती शवरी का अनादर किया इसी भक्ता-

पराध से जल की यह दुर्दशा हो रही है । अतएव इसी के चरणों को गहिये और "सादर इन्हें लेजाके इनका चरण स्परस कराइये तो जल निःसन्देह निर्मल हो जावेगा" ॥ आप लोग सुख से स्नान पान कीजियेगा ॥

क्या करें उन ने ऐसाही किया; और जल परम निर्मल और स्वाद सुगन्धित युक्त हो गया ॥

प्रभु ने जब वहां से चलना चाहा, श्री शवरीजी ने अपना प्राण न्यवछावर कर दिया और परम धाम को चली गई । धन्य, धन्य! अहो! प्रीति परमेश्वरी परम आश्चर्य्य! श्री शवरी जी के प्रेम की प्रशंसा करें ? कि श्री प्रभु की प्रेम पालकता की ? दोनोंही की बलिहारी ॥ देखिये तो श्री शवरी जी ने केवल बन के फल ही खिलाने में प्रभु में अनुराग, उससे शत सहस्र गुण अधिक किया कि जो प्रेम माता सुत को खिलाने में करती है; और वैसेही प्रभु ने श्रीमातु कौशल्या जी महारानी के पवाए भोजनों से भी अधिक-तर मीठे स्वादिष्ठ मान के उन फलों को पाया ॥

इस प्रेम की जय हो और इस प्रेम भाव ग्राहकता की जय ॥ (क०) कछू चूक परी, ताते नीच योनि धरी, तऊ ऊंचे ओर ढरी, हीनजाति पांति न बरी । सन्त सेवा करी, मुनि राम भक्ति भरी, प्रेम पथ अनुसरी, भई प्रीति रीति जबरी ॥ आए राम हरी, देखि लागी

आंसु झरी, आसा बेलि सुख फरी, भूली तन मन खबरी। रस रंग, बदरी, सुधा को स्वाद निदरी, सो खाए राम अदरी, औ माने मातु सबरी ॥

(दोहा) श्रीरामहिँ रस रङ्गमणि, प्रेम भाव की भूख। सबरी की बदरी चखे, मन महँ निदरि पियूष ॥१॥ घर गुरु गृह ससुरारि प्रिय, सदन पाय पहुनाय। सबरी फल रुचि माधुरी, कहुँ न लही रघुराय ॥ २ ॥ प्रेम पगे चखि चार फल, कौशल्या के लाल। भक्तन की कबरी मणी सबरी करी कृपाल ॥ ३ ॥ अधिक बढ़ावत, आप ते, जन महिमा, रघुबीर। तुलसी, शबरी पद रज से, शुद्ध भयो सरनीर ॥ ४ ॥

खगपति श्रीजटायू जी।

टीका। कवित।

"जानकी" हरण कियो "रावण" मरण काज; सुनि "सीता" बाणी "खगराज" दौड़ो आयो है। बड़ी ये लड़ाई लीन्ही, देह वारि फेरि दीन्ही, राखे प्राण, राम मुख देखिबो सुहायो है॥ आए आपु, गोद शीश धारि दृग धार सींच्यो, दई सुधि लई गति तन हू जरायो है। "दशरथ" वत मान कियो जल दान, यह अति सनमान, निज रूप धाम पायो है ॥ ३८ ॥

वार्तिक तिलक।

पक्षियों के राजा महाभक्त श्रीजटायु जी ने अपना तन भी भगवत के निमित्त अर्पण कर दिया। जब

रावण अपना मरना प्रभु के शर से संकल्प करके उसके निमित्त श्रीमायासीताजी को हरके लेचला, तो आपकी आर्त्तवाणी और विलाप सुन के सहायता करने को उक्त श्रीभक्तराज महाराज अति शीघ्र पहुँचे। आप जगतविख्यात निशाचरपति रावण से बहुत लड़े, रावण ने भी जाना कि किसी से काम पड़ा।

जब उस दुष्ट ने आपके दोनों पक्ष काट डाले तब आपने अपना शरीर प्रभु के निमित्त न्यवछावर कर दिया; परन्तु श्री चक्रवर्त्तिकुमार महाराज के प्रिय दरशन के हेतु प्राण रक्खे हुए प्रभु का स्मरण कर रहे थे॥

श्रीप्रिया जी को ढूंढते ढूंढते श्रीजानकीजीवन जी श्री लक्ष्मणजी के साथ साथ वहां आए॥

(क०) जाति के निषिद्ध, मांसभक्षक अशुद्ध "अवधेश" धर्म्म वृद्ध, सखा किये निज शुद्ध हैं। पातक पिनद्ध बली रावण अबुद्ध मूढ़ काल पास बद्ध कियो करम बिरुद्ध है॥ सुनत सनद्ध जुरे रसरुद्ध जुद्ध, सिया छीनि लिये क्रुद्ध परे पंख बिनु बिद्ध हैं। रामकृपा रुद्ध दिये प्रेम ते प्रबुद्ध धाम सुख को समृद्ध धन्य श्री जटायू गृद्ध हैं॥

(दो०) कर सरोज सिर परसेउ कृपासिन्धु रघुबीर। निरषि राम छविधाम मुख विगत भई सब पीर॥ प्रभु ने श्रीजटायु जी का सीस अपने श्रीगोद में लेके, स्नेह के आंसुओं से सींचा॥

(सवय्या)

दीन मलीन अधीन है अंग विहंग परेउ क्षिति खिन्न दुखारी।
"राघव" दीन दयालु कृपालु को देखि दुखी करुणा भइ भारी॥

गीधको गोदमें राखि कृपानिधि नैन सरोजन में भरि बारी।
बारहिं बार सुधारत पंख "जटायु" की धूरि जटान सो झारी॥

(चौ०) "राम कहा तनु राखहु ताता"। मन मुसुकाइ कही तिन्ह बाता॥ "जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुक्त होय श्रुतिगावा॥ सो मम लोचन गोचर आगे। राखौं नाथ! देह केहिषांगे?॥"

चौ० ॥ गीध अधम खग आमिष भोगी गति तेहि दीन्ह जो जांचत जोगी॥ प्रभुने पिता श्रीदशरथ जी महाराज के सदृश जान के, क्रिया की; इस सनमान की बलिहारी॥ (चौ०) गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषण बहु पट पीत अनूपा॥ (दो०) अविरल भगति मांगि वर, गीध गएउ हरि धाम। तेहि की क्रिया यथोचित, निज कर कीन्ही राम॥

(गीत) फिरत न बारहिंबार प्रचास्यो। चपरि चोंच चंगुल हति हय रथ खण्ड खंड करि डास्यो॥ विरथ विकल कियो, इत्यादि, इत्यादि।
तुलसीदास सुर सिद्ध सराहत धन्य बिहंग बड़भांगी॥

(दो०) दशरथ से दशगुन भगति सहित तासु कृत काज। तुलसी सोचत बन्धु युत राम गरीबनिवाज॥ मुए, मरत, मरिहैं, सकल, घरी पहर के बीच। लही न काहू आजु लौं, गीधराज की मीच॥ २॥ गोदसीस धरि, पितुसखा जानि कृपा के धाम। झारी धूरि जटायु की, निज जटान सो राम॥ ३॥

(छप्पै)

भक्ति भूमि भूपाल श्री दशरथ दश दिशि विदित यश ॥ मनु वपु में बहु भक्ति सुतपकरि ब्रह्म विलोके। परमातम प्रिय पुत्र पाय सिय वधू विशोके ॥ फणि मणि इव जल मीन सरिस प्रभु प्रीति सुपागे। सत्य प्रेम के सीम राम बिछुरत तन त्यागे ॥ कौशल्या पति पूज्य जग धर्म ध्वज वात्सल्य रस। भक्ति भूमि भूपाल श्री दशरथ दस दिशि विदित जस ॥ १ ॥ वारिधि रस वात्सल्य की कौशल्या वेला मनहु ॥ कृपा प्रीति प्रभु भक्ति सुकीरति सकल सकेली। विरचेउ चतुर विरंचि राम जननी मुदवेली ॥ सीता सरिस स्वभाव धर्म धुर धरनि उदारा। भरतादिक को करनि रामते अधिक दुलारा ॥ मातु सुमित्रा आदि सब "रस रङ्ग मणी" तेहिं सम गनहु ॥ वारिधि रस वात्सल्य की कौशल्या वेला मनहु ॥ २ ॥ (राम रस रङ्ग मणि) ॥

श्रीअम्बरीष जी।

टीका। कवित्त।

"अम्बरीष" भक्त की जो रीस कोऊ करै और, बड़ो मति बौर, किहूं जान नहीं भाखिये। "दुरवासा" रीसि खीसि सुनी नहीं कहूं साधु मानि अपराध, सिर जटा खैंचि नाखिये ॥ लई उपजाइ काल कृत्या विकराल रूप भूप महाधीर रह्यो ठाढ़ो अभिलाखिये। चक्र दुख मानि ले कृशानु तेज राख करी, परी भीर ब्राह्मण को भागवत साखिये ॥ ३९ ॥

वार्तिक तिलक।

श्री अम्बरीष भक्तराजऋषि जी की समानता जो और कोई किया चाहे सो बड़ाही मतिमन्द विक्षिप्त है, क्योंकि उनकी भक्ति किसी प्रकार कथन में भी नहीं आसक्ती। देखिये, दुर्वासा ऋषि ने किसी साधु की

सिखावनि नहीं सुनी, श्री अम्बरीषजी के बिना अपराध ही अपराध माना, अर्थात् एक समय द्वादशी के दिन महाराज के यहां दुर्बासा जी आए महाराज ने नमस्कार विनय के अनन्तर भोजन के लिये प्रार्थना की। ऋषि:जी ने कहा कि स्नान कर आवैं तो भोजन करैं। इतना कह स्नान को गए। परन्तु उस दिन द्वादशी दोही दण्ड थी। राजा ने बिचार किया कि त्रयोदशी में पारण करने से शास्त्राज्ञा उलंघित होगी। तब ब्राह्मणों ने कहा कि चरणामृत पी लीजिये।

एसाही किया। दुर्बासाजी आए और अनुमान से जाना कि इन्हों ने जल पिया है। फिर तो अत्यन्त क्रोध करके अपने जटा को भूमि में पटक के महा विकराल "काल कृत्या" उत्पन्न करके उससे कहा कि "इस राजा को भस्म करदे" इतने पर भी श्री अम्बरीषजी हाथ जोड़े, दुर्बासा की प्रसन्नता के अभिलाष में खड़ेही रहे। "श्री सुदर्शनचक्र जो" जो श्री प्रभु की अज्ञानुसार राजा की रक्षार्थ सदा समीप ही रहते थे, उनने दुर्बासा के दुखदाई क्रोध से दुखित होके उस कालाग्नि कृत्या को अपने तेज से जलाके राख करदी। और ब्राह्मण की ओर भी चले, यह देख दुर्बासा जी भागे और चक्रतेज से अत्यन्त बिकल हुए, कि जैसा श्री मद्भागवत में लिखाही है॥

टीका । कवित्त ।

भाज्यो दिशादिशा सब लोक लोकपाल पास गये, नयो तेजचक्र चूर किये डारे हैं। ब्रह्मा शिव कही यह गही तुम टेव बुरी, दासन को भेद नहीं जान्यो, वेद धारे हैं॥ पहुंचे वैकुंठ जाय, कह्यो दुःख अकुलाय, हाय हाय! राखौ प्रभु! खरौ तन जारे हैं। "मैं तौ हौं अधीन; तीनगुण को न मान मेरे 'भक्तवात्सल्य गुण' सबही को टारे हैं" ॥ ४० ॥

वार्त्तिक तिलक।

ऋषिजी श्री चक्र के भय से भागे हुए चारों दिशाओं, तथा चारो विदिशाओं, को, और सब लोकों में गए; और लोकपालोंकेपास अर्थात् इन्द्र, वरुण, कुवेर, यम, के पास जाके, उनने शरण शरण पुकारा; परन्तु चक्रका प्रतिक्षणबढ़ताहुआ तेज दुर्वासाजीको यों जलाके चूनासा कियेडालता था जैसे अग्नि कंकड़ पत्थर को। जब श्री ब्रह्माजी एवं श्री शिवजीके लोक में वह पहुंचे, तब आपदोनोंने कहा कि "दुर्वासाजी! तुम ने यह बड़ीनिकम्मी टेव पकड़ी है कि भगवद्भक्तों का भेव (भेद,मर्म) न समझके उनसे उलझतेहो, कि जिनकाप्रभाव वेद गानकरते हैं। तुम्हारी रक्षा हम नहीं करसक्के"। हां, श्री नारद जी ने हित उपदेश दिया॥

तब अन्त में, श्री वैकुण्ठ जापहुंचे और हायहाय! करके अकुलाके प्रभु से अपना दुःखकहा कि "हे प्रभो!

रक्षा कीजिये। त्राहि आदि दयालु रघुराई! रघुबीर करुणा सिन्धु आरतबन्धु जनरक्षक हरे!! इस चक्र का अति तीक्ष्ण तेज मुझे जलाए डालता है। (१) आप शरणागतपाल हैं, मैं शरणागत हूं, (२) आप आर्त्ति-नाशक हैं, मैं आर्त्त हूं; और (३) आप, ब्रह्मण्यदेव हैं, मैं ब्राह्मण हूं॥" यह सुन श्री भगवान् बोले कि "आपने बात तो ठीक कही, परन्तु मैं भक्तों के आधीन अस्वतन्त्र हूं; जो मेरे उक्त तीन गुण आपने कहे, उनका भान मुझको नहीं है, क्योंकि 'भक्तवात्सल्यगुण' ने इस देश काल में उन तीनों गुणों का तिरस्कार कर दिया है"॥

टीका। कवित्त।

" मोको अति प्यारे साधु, उनकी अगाध मति; कस्यो अपराध तुम, सह्यो कैसे जात है। धाम, धन, वाम, सुत, प्राण, तनु, त्याग करैं, ढरैं मेरी ओर, निशि भोर मोसो बात है॥ मेरेऊ न सन्त बिनु और कछु; सांची कहौं, जाओ वाही ठौर, जाते मिटै उत-पात है। बड़ेई दयाल, सदा दीन प्रतिपाल करैं; न्यूनता न धरैं कहूं; भक्ति गात गात है" ॥ ४१ ॥

वार्त्तिक तिलक।

'मुझे साधु अत्यन्तप्यारे हैं, काहे कि उनका अगाध-मत है। सो जब तुमने उन्हीं का अपराधकिया तो मुझसे कैसे सहा जासकता है? वे मेरे लिये, गृह, धन, तन, अन्न, जन, वरंच स्त्री, पुत्र तथा प्राण तक, परित्याग

करके मेरी ओर, लगते हैं। और रात्रि दिवस मेरा भजन छोड़ उनके दूसरी बात ही नहीं॥

एवं, मेरे भी सन्तों के लालन पालन सार सँभार बिना और कोई कार्य्य कुछ भी नहीं है, मैं सच्ची २ कहे देता हूं। (चौ०) असससज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसत धन जैसे॥ आप उन्ही के पास जाइये, जिस्से यह चक्रकृत दुःख उत्पात मिट जावें। यह शंका न कीजिये कि वे मुझे कैसे क्षमा करेंगे, क्योंकि मेरे सन्त भक्त बड़ेही क्षमाशील, अकारण पर-उपकारी एवं दयालु होते हैं तथा दीनों का सदा प्रतिपाल करते हैं। दूसरे का चूक अपने हिय में नहीं रखते; क्योंकि उनके तो सम्पूर्ण अङ्गों में मेरी भक्ति ही भरी है, किसी की न्यूनता रखने के लिये कुछ भी जगह ही उनके चित्त में बची नहीं है॥

(चौ०) सुनु, मुनि! सन्तन के गुण जेते।
कहि न सकहिं श्रुति शारद तेते॥"

टीका। कवित्त।

ह्वैकरि निरास, ऋषि आयो नृप पास, चल्यो गर्व सों उदास, पग गहे, दीन भाष्यो है। राजा लाज मानि, मृदु कहि, सनमान कस्यो ढस्यो, चक्र ओर, कर जोर, अभिलाष्यो है॥ भक्त निसकाम, कभूं कामना न चाहत हैं, चाहत है विप्र, दूरि करो दुख, चाख्यो है॥ देखिकै विकलताई, सदा सन्त सुखदाई, आई मन मांझ, सब तेज ढांकि राख्यो है॥ ४२॥

वार्त्तिक तिलक।

प्रभु के ऐसे वचन सुन के, ऋषिजी निरास, तथा अपने गर्व (अभिमान) से उदासीन होके चले, और राजा अम्बरीष जी के पास आके चरणों को पकड़कर ऋषि ने दीन वचनों से क्षमा मांगी। महाराज लज्जित हो, सादर पग छुड़ा, कोमल वचनों से मुनिजी का सनमान करके, श्री चक्र जी की ओर जा हाथ जोड़, यों प्रार्थना करने लगे, कि "हे क्षमामन्दिर श्रीसुदर्शन जी ! यद्यपि हरि भक्तों को कोई कामना नहीं होती, वे सदा निष्काम रहते हैं, तथापि मेरी यह कामना है कि, इन विप्रजी ने बहुत दुःख पाया सो अब, आप मुझ पर कृपा करके इनकी रक्षा कीजिये" सन्तों के सुखदाता श्री सुदर्शन चक्र जी ने द्विज के दुख से श्रीभगवतभक्त को विकल देख, प्रसन्न हो, प्रार्थना मान, अपने तेज को छिपा लिया, और भाग्यभाजन राजा ने दुर्वासा जी को अभयदान दे भोजन करा, बिदा किया॥ (चौ०) "आपत ताड़त परुष कहन्ता। पूजिय विप्र कहहिं अस सन्ता॥ (दो०) मन क्रम वचन, कपट तजि, जो कर भूसुर-सेव। विष्णु समेत विरंचि शिव, बश ताके सब देव॥"

टीका। कवित्त।

एक नृपसुता सुनि अम्बरीष भक्तिभाव, भयो हिय भाव ऐसो बर कर लीजिये। पितासों निशंक ह्वैके

कही "पति कियो मैं ही, विनय मानि मेरी, वेगि चीठी लिखिदीजियै ॥" पातीलैके चल्यो विप्र, छिप्र वही पुरी गयो, भयो चाव जान्यो ऐपै कैसे तिया धीजियै । कह्यो तुम जाय, "रानी बैठीं सत आय, मोको बोल्यो न सुहाय, प्रभुसेवा मांझ भीजियै ॥४३॥

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीअम्बरीष जी की एक आख्यायिका कहकर अब राजसुता सम्बन्धी भक्ति उनकी वर्णन करते हैं । एक राज कन्या को श्रीअम्बरीष जी की भक्ति और प्रेम भाव सुनके बड़ा आनन्द हुआ, उसके हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि "ऐसा पति कर लेना चाहिये; जो भाग्यशालिनी ऐसे भक्तराज की दासी हो वह धन्य है" यों विचार कर, निशंक हो, उसने अपने पितासे कहा कि मैंने श्री ६ अम्बरीष जी को पति मान लिया, "बरौंताहि न तु रहौं कुमारी"; "आप मेरा विनय मान के राजा को एक पत्रिका लिख दीजिए" । कन्या के पितासे पत्र लिखके एक ब्राह्मण के हाथ दिया । ब्राह्मण ने, वह पत्र ले, बड़ी शीघ्रता से उस पुरी में जा, महाराज (श्रीअम्बरीषजी) को दिया । महाराज ने पत्र पढ़ के कहा कि "उसका नवीन अभिलाष मैंने भली भांति जाना, परन्तु मैं स्त्री को कैसे ग्रहण करूं ? क्योंकि मेरे तो सैकड़ों रानियां घर में बैठी हैं और मुझको उनसे बात तक करनी नहीं भाती ।

(चौ०) उमा ! राम सुभाव जिन जाना।
तिनहिं भजन तजि, भाव न आना॥
मेरा मन तो केवल भगवत सेवा ही में रँग गया है।
यह बात आप जाके राजकन्या से कह दीजिये"॥

टीका। कवित्त।

कह्यो नृपसुतासो जु कीजिये यतन कौन ? पौन जिमि गयो आयो काम नाही बिया कौ। फेरिकै पठायो, सुख पायो मैं तो जान्यों वह बड़े धर्मज्ञ, वाके लोभ नाहीं तिया कौ। बोली अकुलाइ मन भक्ति ही रिझाइ लियो, कियो पति, मुख नहीं देखौं और पिया की। जाइके निशंक यह बात तुम मेरी कहौ, "चेरी जौ न करौ तौ पै लेवो पाप जिया कौ" ॥४४॥

वार्त्तिक तिलक।

ब्राह्मण ने आके राजकन्या से सब वार्त्ता सुना के, कहा कि "क्या यतन किया जाय? मैं पवन के समान वेग से गया और आया पर कार्य्य कुछ भी (गुंजा के बीया भर भी) न हुआ! राजकन्या ने कहा कि "उनके तीव्रतर वैराग्य की अनुपम व्याख्या सुनके मुझको बड़ाही आनन्द हुआ; मैं जानती हूं कि वे बड़ेही धर्मज्ञ हैं तथा उनके शुद्ध अन्तःकरण में भक्ति लता ऐसी सघन फैली है कि स्त्री आदिक की चाह के अङ्कुर की जगह रही नहीं है"। इतना कहने के साथही साथ भक्तराज के स्नेह से व्याकुल होके वह सुशीला

फिर बोलउठी कि "उनकी भगवद्भक्ति ही ने मेरे अंतः-करण को आकर्षण करके मुझे ऐसा रिझा लिया है कि मैं उनको अपना पति मान चुकी हूं। और अब दूसरे पुरुष का मुँह मैं देखनेवाली नहीं। आप फिर जाके निःशंक कहिये कि 'जो आप अपने चरण की चेरी न कीजियेगा तो मेरे देह त्याग का पाप लीजिये' मैं उनके बिन अपने प्राण नहीं रखने की ॥

(दो०) कै अपनावहिँ मोहि वे, कै मैं त्यागौं देह ।
भक्त शिरोमणि नृपति ते, कहेहु विप्रवर ! नेह" ॥

टीका । कवित्त ।

कही विप्र जाय, सुनि चाय भहराय गयो, दयो लै खड़ग "यासों फेरी फेरि लीजिये" । भयो जू विवाह उत्साह कहूं मात नाहिँ; आई पुर अम्बरीष देखि छबि भीजिये॥ कह्यो "नव मन्दिर में झारिकै बसेरो देवो, देवो सब भोग विभौ, नाना सुख कीजियै। पूरब जनम कोऊ मेरे भक्ति गन्ध हुती, याते सनबन्ध पायो यहै मानि धीजिये" ॥४५॥

वार्त्तिक तिलक ।

ब्राह्मण ने फिर जा के श्रीअम्बरीष जी से राज-कन्या की प्रीति प्रतीति प्रणय पातिव्रत्य का पन और प्राण त्याग का संकल्प पर्यन्त कहा। राजा ने, ऐसा सप्रेम भाव सुन, धर्म संकष्ट से अधीर हो, अपना खड्ग दिया, कि "इसी से भांवरी फिरा लीजियेगा"

[राजा ने खड्ग इस कारण से दिया कि क्षत्रियों का शस्त्र शास्त्र में उनका अंग ही माना गया है] ॥

इस प्रकार से बिवाह होजाने पर राजकन्या का आनन्द तन मन में अँटता नहीं था। बड़ेही उत्साह से मन्त्री वर्गों के साथ पुर में आईं। राजसुता तथा श्रीअम्बरीषजी दोनों श्री युगल सरकार के भक्तिरस माधुरी से छके हुए अन्योन्य छवि देख के श्रीप्रभु प्रेम में मग्न हो गए। महाराज ने आज्ञा दी कि "नए मन्दिर को झाड़ वहार, स्वच्छ कर, रानी को निवास देके, सब भोग सामग्री दिया जावे, कि वे नाना प्रकार के सुख भोगें। जाना जाता है कि पूर्व जन्म की मेरी इनकी कोई भक्ति सम्बन्धी विमल वासना थी; इसी हेतु से मेरा इनका सम्बन्ध हुआ; और ऐसाही अनुमान कर के इनका स्वीकार किया गया" ॥

टीका। कवित्त।

रजनी के सेस पतिभौन में प्रवेस कियो, लियो प्रेम साथ, ढिग मन्दिर के आइये। बाहिरी टहल पात्र चौका करि रीझि रही, गही कौन जाय, जामें होत ना लखाइये ॥ आवतही राजा देखि लगै न निमेष क्यों हूं कौन चोर आयो मेरी सेवा लै चुराइयै। देखी दिन तीनि, फेरि चीन्हि कै प्रवीन कही, "ऐसो मन जोपै प्रभु माथे पधराइयै" ॥ ४६ ॥

वार्त्तिक तिलक।

भक्तिवती रानी अपने निवास में रहने लगी। एक दिन कुछ रात रहते हुए अकेली केवल अपने प्रिय प्रेम ही को संग लेके पति के पूजामहल में प्रवेश करके भगवतमन्दिर के समीप आके बाहर की सेवा टहल किये अर्थात पूजा के पार्षद मांजके चौका लगाके, उस सेवा सुख के अनुभव से अति प्रसन्नता पुर्बक चली आई, जिस्में किसी को लखाई न पड़े। तो अब इस्में सेवा करनेवाली कौम रानी कही जावे ? तदनन्तर श्रीभक्तराजा जी ने, आके देखा कि वाह्य कैंकर्य्य (पार्षद चौका) कोई कर गया है। इस्से उनको ऐसी चंचलता हुई कि उनके मन रूपी नेत्र में स्थिरता का निमेष भी नहीं लगता था। विचारने लगे कि यह कौन चतुर चोर आके मेरी सेवा सम्पति चुरा ले गया ?

इस प्रकार तीन दिन पर्य्यन्त देखा; चौथे दिन उसी समय परम प्रवीण राजा छिप के बैठे, और देख के भक्तिवती रानी को पहिचान के कहा कि "जो तुम्हारे मन में ऐसीही सेवा की उत्कंठा और भक्ति है तो अपने मनभावन को अपने निज भवन में ही क्यों नहीं पधरा लेती हो? जिस्में तुम्हारेही सीस पर सेवा सुख भार रहे"॥

(लोक०) "पुस्तक, माला, असनो, बसनो।
ठाकुर बटुआ, अपनो अपनो॥"

टीका। कवित्त।

लई बात मानि, मानो मन्त्र लै सुनायो कान; होत हीं बिहान, सेवा नीकी पधराई है। करति सिँगार, फिरि आपुही निहारि रहै, लहै नहीं पार, दृग झरी सी लगाई है॥ भई बढ़वार, राग भोग सों अपार भाव, भक्ति विस्तार रीति पुरी सब छाई है। नृपहू सुनत अब लागि चोप देखिबे की; आए ततकाल मति अति अकुलाई है॥ ४७॥

वार्त्तिक तिलक।

श्री भक्तराज के स्वच्छ अंतःकरण से प्रीति युक्त निकले हुए ऐसे अनुपम वचन सुनतेही प्रेम मूर्त्ति रानी ने महामुदित मन में इस प्रकार मान लिया कि मानो गुरु मन्त्र ही कान में सुना दिया गया है। प्रातःकाल होते ही उनने भगवत के दिव्य अर्च्चा विग्रह नीके प्रकार से उत्सव पूर्व्वक विराजमान किया। (चौ०) जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू॥ फिर अब क्या कहना है, अपने हाथों से सप्रेम शृङ्गार करके पुनि उस छवि को आपही अवलोकन करती हुई चन्द्रचकोरवत एक टक रहजाती, शोभासिन्धु श्रीप्रभु की शोभा का पार नहीं पाती थी; उसके नेत्रों से प्रेमानन्द जल की झड़ी सी लग जाती थी। सेवा राग भोग से अपार भाव हुआ। इस भक्तिरसिका रानी की प्रीति प्रतीति रीति भक्ति की ऐसी अभि-

वृद्धि हुई कि संपूर्ण नगर में सुकीर्त्ति छा गई ॥

यहां तक कि राजा ने भी सुना; तब उनको भी प्रेमवती के प्रेमवर्द्धकप्रभु के दर्शन की अतिशय चाह उत्पन्न हुई; वरंच दर्शन बिना व्याकुल होके ततकाल चलही तो दिया ॥

टीका। कवित्त।

हरे हरे पांव धरै, पौरियानि मने करै, खरे अरबरै, कब देखौं भागभरी को। गए चलि मन्दिर लौ, सुन्दरी न सुधि अङ्ग, रङ्ग भीजि रही, दृग लाइ रहे झरी को॥ बीन लै बजावै, गावै, लालन रिझावै, त्यों त्यों अति मन भावै, कहैं धन्य यह घरी को। द्वार पै रह्यो न जाय, गए ढिग ललचाय, भई उठि ठाढ़ि, देखि राजा गुरु हरी को ॥ ४८ ॥

वार्त्तिक तिलक।

जब निकट पहुँचे तब धीरे धीरे पांव रखते और पौडियों को अर्थात् वृद्ध द्वाररक्षकों तथा द्वार रक्षिणीयों को रसे रसे निवारण करते, कि रानी को जाके जताओ मत। और अत्यन्त अकुला रहे हैं कि उस भक्ति भाग्य-पूर्णा को मैं कब देखूं। यों ही जब मन्दिर के समीप जा पहुँचे तब देखते क्या हैं कि सानुरागा सुन्दरी अपने शरीर की सुधि भूल के प्रेम रस रंग में मग्न है, और उसके नेत्रों से प्रेमानन्द जल की अविच्छिन्न वर्षा हो रही है; वीणा बजा के झीने स्वर से प्रभु का नाम-

यश गाके प्राणप्रिय को रिझा रही है। यह दशा ज्यों ज्यों देखते हैं त्यों त्यों श्रीअम्बरीष जी के मन में यह दशा तथा प्रीतिदशावतीरानी अत्यन्तही प्रिय लगती हैं। महाराज मन में कहते हैं कि यह घड़ी धन्य है॥ (रा०क०) "कोउ लै बीन नवीन सुरनते, मनहु वशीकर जापैं। कोउ मृगनयनी कोकिलबयनी, पंचम राग अलापैं॥" (श्लोक) "नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये नच। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि, नारद!"॥

प्रेम सुख की लालच से द्वार पर ठहरा नहीं गया, तब रानी के पासही जा खड़े हुए। "हरि ते अधिक गुरुहि जिय जानी" के आशय ने, प्रेम निमग्न रानी की सुरति को श्री सेवा से खींच के, भक्तराज के सन्मुख कर दिया; रानी ने देखा कि मेरे ..रे (पति) हितोपदेशक गुरु, राजा, पासही खड़े हैं॥ इस्से उनके आदर के निमित्त उठ खड़ी हुई॥

टीका। कवित्त।

वैसे ही बजाओ बीन ताननि नवीन लैकै, झीन सुर कान परै, जाति मति खोइये। जैसे रंग भीजि रही, कही सो न जाति मोपै, ऐपै मन नैन चैन कैसेकरिगोइये। करिकै अलाप चारो फेरिकै सँभारि तान, आइगयो ध्यान रूप ताहि मांझ भोइये। प्रीति रस रूप भई, राति सब बीति गई, नई कछु रीति अहो! जामें नहिं सोइये॥ ४९॥

वार्त्तिक तिलक ।

तब राजा ने कहा कि "इस सन्मान को इस घड़ी जाने दो; जैसे बीन बजाती रही हौ, वैसेही बजा के नए तान लेके मधुर स्वर से स्वामी के यश गान करो; क्योंकि उस श्रवणामृत के सुने बिना मेरी मति विकल हुआ चाहती है।"

रानी जैसे अनुराग रंग में मग्न हो रही है, सो दशा मुझ से कही नहीं जासकती, परन्तु ध्यान से देखते ही मन तथा मानसिक नेत्रों को ओपती अर्थात् चमाचम प्रेमप्रभामय कर देती है; वह प्रेमानन्द कुछ कहे बिना किसी प्रकार से रहा नहीं जाता ।

राजा के बचन सुनतेही रानी ने वीणा लेके फिर सरस स्वर अलाप करके गान तान को सँभाला; कि जिस्के साथही मन में श्यामसुन्दररूप अनूप का ध्यान आ गया और उसी में मग्न हो गई । इस भांति, रानी राजा दोनों को ऐसी भक्ति रस रूपा प्रीति बढ़ी कि जिस्में सारी रात पल सरीखी व्यतीत हो गई । आश्चर्य्य मय प्रीति की अलौकिक रीति की अनूठी घटनाएं ऐसीही विलक्षण हैं, कि जिस्में नींद आलस भूख इत्यादि बाधावों का तो कहनाही क्या है, जागरित स्वप्न सुषुप्त अवस्था पर्य्यन्त भी अपना २ निरादर देखकर अन्तःकरण और वाह्य इन्द्रियों से अपना शासन आप ही उठा लेती हैं ॥

टीका। कवित्त।

बात सुनी रानी और, राजा गए नई ठौर, भई सिर मोरे, अब कौन वाकी सर है। हमहूं लै सेवा करैं, पति मति बश करैं, धरैं नित्य ध्यान, विषय बुद्धि राखी धर है॥ सुनिकै प्रसन्न भए अति अम्ब-रीष ईस लागी चोफ़, फैल गई भक्ति घर घर है। बढ़ै दिन दिन चाव, ऐसोई प्रभाव कोई, पलटै सुभाव होत आनँद को भर है॥ ५०॥

वार्त्तिक तिलक।

यह वृतान्त और सब रानियों ने सुना, कि नई रानी के समीप में जाके प्रभु का नाम गुण गान सुन्ते २ राजा ने आज रात्रिभर बिता दिया; अतएव वह तो अब सबकी शिरोमणि हो गई, अब उस्की समानता हम सब कैसे कर सकती हैं। तब सबों ने यह विचारा कि महाराज यदि श्रीभगवत सेवा भक्ति ही से प्रसन्न होते हैं तो हम सब भी क्यों न भगवत सेवा करके प्राणपति को अपने बश करलें।

सब रानियों ने ऐसाही किया; विषयात्मक बुद्धि को अलग रखके केवल भगवत सेवा पूजा गुणगान और रूप अनूप के ध्यान में ही दिन रात बिताने लगीं। उन सबों की भक्ति को भी उनके स्वामी श्री अम्बरीष जी सुनके बड़ेही प्रसन्न हुए। और उन

सब रानियों के हरि मन्दिरों में भी जा जाके उनको वैसाही आनन्द देने लगे ॥

महाराज की यह रीति समस्त पुरवासियों ने सुनी; तब तो नगर भर के लोगों को भगवद्भक्ति में अतिशय भाव चाव उत्पन्न हुआ और घर घर में भक्ति कल्पलता फैल फूल के फल युक्त हुई। इस प्रकार महाराज श्रीअम्बरीष जी के घर नगर तथा देश में दिन दिन प्रति प्रेमभाव भक्ति की वृद्धि और उन्नति हुई। देखिये, परमप्रेमवती एक रानी की भक्ति के प्रभाव सेही, सब रानियों बरंच सम्पूर्ण नगर वासियों का स्वभाव संसार से पलट के प्रभु में लग गया। और सर्वत्र भगवत प्रेमानन्द छा गया ॥ सत्संग ऐसा पदार्थ है।

श्रीविदुरानीजी और श्रीविदुरजी।

टीका। कवित्त।

न्हात ही विदुर नारि, अंगन पखारि करि; आइ गए द्वार कृष्ण बोलि कै सुनायो है। सुनतही स्वर, सुधि डारी लै निदरि, मानो राख्यो मद भरि, दौरि आनिकै चितायो है ॥ डारि दियो पीत पट, कटि लपटाइ लियो, हियो सकुचायो, वेष बेगिही बनायो है। बैठी ढिग आइ, केरा छीलि छिलका खवाइ; आयो पति, खीभयो, दुःख कोटि गुनो पायो है ॥ ५१ ॥

वार्त्तिक तिलक।

महाभारत होने के पूर्व श्रीकृष्ण भगवान् पाण्डवों

की ओर से मिलाप की वार्ता करने को दुर्योधन के पास गए; पर उसने नहीं माना; इससे उस्के घर भोजन भी नहीं किया।

श्रीविदुर जी के गृह आए, उस समय श्रीविदुर जी की स्त्री, दूसरे वस्त्र के अभाव से विवस्त्र हो अंगो को धो २ स्नान कर रही थीं। द्वार पर आके श्रीकृष्ण भगवान् ने महा मधुर स्वर से पुकारा; श्री विदुरानी जी आपका वह मधुर स्वर सुनतेही सुध बुध भूल गईं, क्योंकि वह स्वर मानो प्रेम से भरा हुआ था; दौड़ती हुई आके किवाड़ों को खोल के दरशन किया। श्रीयादवेन्द्र जी भी उनको प्रेमोन्मत्त वस्त्रहीन देख के अपना पीताम्बर शीघ्रही आप को उढ़ा दिया; जिस्को आपने अपनी कटि में लपेट लिया और संकोच युक्त हो, शीघ्रता से अपने वेष को सँभाल लिया॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने कुछ भोजन मांगा। आप केले ला, पास बैठ, केले को छीलने लगीं, पर प्रेम तथा हर्ष से विह्वल होके, छिलकों ही को तो खिलाती जाती थीं और सार को फेंक २ देती थीं।

भक्तवत्सल भगवान् प्रेम के स्वाद में छके छिलकों ही को बड़े चाव से खाते जाते थे; इतने में श्रीविदुर जी आके इस कौतुक को देख अपनी धर्मपत्नी पर

बहुत झिँझलाए; तब सचेत हो अपने व्यतिक्रम को समझ के श्रीविदुरानी जी ने अत्यन्त दुख पाया ॥

(दो०) अहह! भइउँ मैं बावरी! रही न तनु सुधिनेकु।
ऐसी सुधि भूली, कि नहिं छिलका सार विवेकु ॥

टीका । कवित्त ।

प्रेम को विचार आपु लागे फल सार दैन, चैन पायो हियो, नारि बड़ी दुखदाई है। बोले रीझि श्याम, तुम कीनो बड़ो काम, ऐपै स्वाद अभिराम वैसी वस्तु में नपाई है ॥ तिया सकुचाय, कर काटि डारौं हाय! प्राणप्यारे को खवाई छीलि छीलिका न भाई है। हित ही की बातें दोऊ, पार पावै नाहिं, कोउ, नीके कै लड़ावै, सोई जानै, यह गाई है ॥ ५१ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

प्रिय पाठक! प्रेम के प्रवल प्रभाव को विचार कीजे। अथवा, विदुरजी अपनी धर्मपत्नी के प्रेम प्रमाद को विचार के, प्रभु को फल का सारांश खिलाने लगे, तब उनके हृदय में आनंद आया; और मन में वे यह कहने लगे कि इसने प्रेम से विक्षिप्त होके यह दुःखप्रद कार्य्य किया।

श्याम सुन्दर जी ने प्रसन्न होके कहा कि "आपने काम तो बहुत अच्छा किया कि केलों का सारांश खिलाया; परंतु न जानूं क्या कारण है कि जैसा उन

छिलकाओं में अत्यन्त सुन्दर स्वाद मुझे मिलता था वैसा इस सारांश में नहीं प्राप्त हुआ।

(श्लो०) पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
अभी, अभी, दुर्योधन के घर अनेक षट्रस व्यंजनादि का त्याग किये हुए चला आता हूं॥

उधर श्रीविदुरानी जी अतिशय संकोच को पाके पश्चात्ताप करने लगीं कि, "हाय! मैं तो इन हाथों को काट डालूं, जिन हाथों से प्राणप्रिय को छिलके खिलाए। लालन को छिलके कैसे प्रिय लगे होंगे?।"

देखिये! श्री विदुरानी जी तथा श्री विदुरजी का छिलका और सार खिलाना, ये दोनों ही बातें प्रेम की ही हैं; तथापि प्रेमरूपी सागर ऐसा अपार है कि कोई उसका पार नहीं पासकता; हां, जो इस प्रेम में परायण होके प्रेमग्राहकप्रभु को लाड़ लड़ावै, प्रेम करे, सोई इस अनुराग सिन्धु की गम्भीरता तथा अपारता को कुछ जाने; अपने तो, आप सब की कृपा से, केवल गान मात्र कर दिया है॥

श्री सुदामाजी।

टीका। कवित्त।

बड़ो निसकाम, सेर चून हू न धाम, ढिग आई

निज भाम, प्रीति हरि सों जनाई है। सुनि सोच पस्यो
हियो खरो अरबस्यौ, मन गाढ़ो लैके कस्यौ, बोल्यो
" हांजू सरसाई है " ॥ " जावो एक बार, वह बदन
निहार आवो, जोपै कछु पावो, ल्यावो, मोको सुख-
दाई है " । " कही भलीबात, सात लोक में कलंक
ह्वै है, जानियत याही लियें कीन्ही मित्रताई है " ॥५३॥

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीकृष्णभगवान् के मित्र श्रीसुदामा जी बड़े नि-ष्काम भक्त थे; यहां तक कि घर में सेरभर आटा भी न रहता था। एकदिन उनकी धर्मपत्नी श्री "सुशीला" देवी, समीप में आके, कहने लगीं कि " सुना है कि श्रीलक्ष्मीपति द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र जी से और आपसे मित्रता है ।" यह सुन, श्रीसुदामा जी उस्का आशय विचार के, हृदय में अत्यन्त घबड़ाकर सोच में पड़ गए; परन्तु फिर मन को दृढ़ करके बोले कि " हां, उनकी मेरी तो बड़ी सरस प्रीति है । "

इसपर ब्राह्मणी (उनकी स्त्री) ने कहा कि " एक बेर जाके अपने मित्रवर का मुखचन्द्र अवलोकन कर आइये; और यदि कुछ मिले तो लाइये कि वह मुझे बड़ा सुखदाई होगा । "

भक्तजीने उत्तर दिया कि " तुमने बात तो भली कही, परन्तु मुझको समस्त लोकों में कलंक होगा कि

इस अर्थार्थी भिक्षुक ब्राह्मण ने केवल द्रव्य ही की लालच से प्रभु से मित्रता की है ॥

(दो०) चाहत नहिँ रसरंगमणि चन्द्रमुखी, सुत, वित्त।
चाह यही प्रभु ! दीजिये 'चाह न उपजै चित्त' ॥१॥
भजन बिगारी कामिनी, सभा बिगाड़ी कूर।
भक्ति बिगाड़ी 'लालची' केसर मिलगइ धूर ॥२॥

एवमादि, इनने बहुत "नहीं, नहीं" किया; परन्तु—

टीका। कवित्त।

तिया सुनि कहै " कृष्णरूप क्यौं न चहै ? जाय, दहै दुख आपही सो, " बचन सुनाए हैं। आई सुधि प्यारे की, विचारे, मति टारे सब, धारे पग, मग भूमि "द्वारावती" आए हैं ॥ देखिकै विभूति, सुख उपज्यो अभूत कोऊ, चल्यो मुखमाधुरी के लोचन तिसाए हैं। डरपत हियो, ड्योढ़ी लाँघि, मन गाढ़ो कियो, लियोकर गहि चाह तहां पहुँचाए हैं ॥५४॥

वार्तिक तिलक।

इनका उत्तर सुन, इनकी स्त्री ने कहा कि " जाके केवल अपने प्रिय मित्र के रूप अनूप का दर्शन मात्र क्यों नहीं करते ? " और ऐसा प्रमाण बचन भी सुनाया कि "भगवत के दर्शनही से दारिद्र्यादि सब दुःख आपही आप भस्म हो जाते हैं। "

श्रीसुदामा जी को प्राणप्यारे मित्र के रूप का ध्यान आगया; तब विचार करके लोभादिकों के उपहास की

शङ्का को चित से हटाके, श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन को सानुराग चले; प्रेममद में छके झूम झूम पग धरते, मिलन सुख का मंजुमनोरथ करते हुए श्रीहरि कृपा से अति शीघ्र श्रीद्वारका जी में आ पहुँचे । परम प्रिय प्रभु का ऐश्वर्य्य विभूति देख:के मन में कोई आश्चर्य्य सुख उत्पन्न हुआ, और आगे बढ़े ॥

मित्र मुखचन्द्र सुधा पान के हेतु नेत्र चकोर अतिशय प्यासे हैं; इस्से आप अत्यन्त आतुर हो रहे हैं; हृदय में किसी के रोक देने का भय भी हो रहा है; परन्तु मन को दृढ़ करके, राजसदन पर आ विप्र जी ने डेवढ़ीयों को उल्लंघन किया, मानो मिलनकीचाह रूपा प्रतिहारी ने इनका हाथ गहके (थांमके) इनको श्रीकृष्ण महाराज के पास पहुँचा दिया ॥

"जाकी सुरति लगी है जहां । कहै कबीर सो पहुँचै तहां ॥"

टीका कवित्त ।

देख्यो श्याम आयो मित्र, चित्रवत रहे नेकु; हित को चरित्र, दौरि रोइ गरे लागे हैं । मानो एकतन भयो, लयो ऐसे लाइ छाती, नयो यह प्रेम, छूटैं नाहिँ अंग पागे हैं ॥ आई दुबराई सुधि, मिलन छुटाई तानै; आने जल रानी, पग धोए भाग जागे हैं । सेज पधराइ, गुरु चरचा चलाइ, सुखसागर बुड़ाइ, आपु अति अनुरागे हैं ॥ ५५ ॥

वार्त्तिक तिलक।

श्रीश्यामसुन्दर जी ने देखा कि मेरे मित्र आए, तब प्रेमानन्द की विचित्रता से कुछ काल तो अपनपौ भूलके चित्रवत जहां के तहां रह गए; फिर दौड़के अति विहूल होके मित्र के, चरित्र में पगे, नेत्रों में आंसू भर, सखा (सुदामाजी) को अपने कण्ठ में लपटा, और इस प्रकार से अपने हृदय में लगालिया, कि मानो श्याम-सुदामा एकही मूर्त्ति हो गए; एवं, इस लोकोत्तर प्रेम के वश हो के परस्पर अंग ऐसे पग गए कि छुड़ाए से दोनों छूटते नहीं। फिर श्रीश्यामसुन्दर जी को यह सुधि आगई कि "मेरे मित्र अति दुर्ब्बल हैं, सो कहीं इनको क्लेश न हो"; तब आप ने छोड़दिया।

हाथ में हाथ मिलाए हुए रंग महल में लाए; श्रीरुक्मिणी जी जल और थार लाईं, आप ने अपने कर कमलों से उनके चरण कमल धोए; और कहा कि आज मेरे धन्य भाग्य हैं।

(सवैया)

"ऐसे बेहालबे वायन सों भए कंटक जाल गुँधे पग जोए। हाय सखा! दुख पाए महा, तुम आए इतै न कितै दिन खोए॥ देखि सुदामा की दीन दशा करुणाकरिकै करुणामय रोए। पानी परात को हाथ छुए नहिँ, नैननकेजलसों पगधोए॥" (श्रीनरोत्तमकवि)

लेजा के निज दिव्य सेज पर विराजमान करके, कुशल पूछ, श्रीगुरु गृह में जो इकट्ठे पढ़ते थे सो उन दिनों के चरित्रों की चरचा चलाके, आनन्द के सागर में इनको मग्न करदिया; और आप भी इनके अनुराग में मग्न होगए ॥

टीका। कवित्त।

खिरवा छिपाए कांख, पूछे कहाल्याए मोको? अति सकुचाए, भूमि तकैं, दृग भींजे हैं। खैंचि लई गांठि, मूठि एक मुख मांझ दई, दूसरी हूं लेत स्वाद पाइ आपु रीझे हैं॥ गह्यो कर रानी, "सुखसानी प्यारी वस्तु यह, पावो बांटि" मानों श्रीसुदामा प्रेम धीजे हैं॥ श्याम जू विचारि दीनी सम्पति अपार, बिदा भए, पै न जानी सार बिछुरनि छीजे हैं॥ ५६॥

वार्त्तिक तिलक।

आपने पूछा कि "सखे! मेरे लिये क्या लाए हो?" यह सुन श्रीसुदामा जी सकोच के बश होके पृथ्वी की ओर देखने लगे और इनकी आंखो में आंसू भर आए।

श्रीश्यामसुन्दर जी ने देखा कि फटे कपड़े में एक छोटी सी गठरी बांधे हुए ये कांख में दबाए छुपाए हुए हैं; देखतेही उस्को खींच के खोल देखा कि उसमें चिउड़े हैं। आप उसमें से एक मुट्ठी लेके शीघ्रता से श्रीमुख में डाल के चबाने, पुनः दूसरी मुट्ठी भी भर के पाने लगे, और मित्र की लाई वस्तु जान के

उस्में अपूर्व स्वाद पा अत्यन्त रीझ के आपने तीसरी मुट्ठी भी भर ली; मानों उस चिउड़े को श्रीसुदामा जी के प्रेम का रूपही मानके ग्रहण करते हैं। श्री रुक्मिणी जी महारानी ने आपका करकंज पकड़के कहा कि "यह वस्तु प्रेमसुख से सनी हुई आप अकेलेही सब न पालीजिये, किन्तु हमसबों का भागभी बांट दीजिये"। तब आपने मुट्ठी छोड़दी और उस्को श्रीमती रुक्मिणी जी को देदिया।

सत्यसंकल्प श्रीकृष्णभगवान् ने उस चिउड़े को ग्रहण करके, विचार के, अपने मन ही से इनको अपार सम्पति देदी, प्रत्यक्ष में कुछ न दिया; परन्तु इन ने इस भेद को न जाना।

श्रीसुदामा जी प्रिय मित्र का परम सत्कार पाते हुए (बहुत आग्रह करने से) सात दिन रहकर, विदा हुए। श्रीमित्रवर के वियोग से अतिशय दुःख पाते अपने गृह को लौट चले॥ (चौ०) मिलत एक दारुण दुखदेहीं। बिछुरत एक प्राण हरिलेहीं॥

टीका कवित्त ।

आए निज ग्राम वह, अति अभिराम भयो, नयो पुर द्वारका सो, देखि मति गई है। तिया रंग भीनी संग सतनि सहेली लीनी, कीनी मनुहारि यों प्रतीति उर भई है॥ वहै हरि ध्यान रूप माधुरी को पान, तासो राखैं निज प्रान, जाके प्रीति रीति नई है।

भोग की न चाह ऐसे तनु निरबाह करैं, ढरैं सोई चाल सुखजाल रसमयी है ॥५७॥

वार्त्तिक तिलक ।

जब अपने गांव (सुदामापुर) में आ पहुँचे तो देखते क्या हैं कि वह ग्राम अतिशय रमणीय होगया है यहां तक कि सब नवीन रचनायुक्त मानों साक्षात् द्वारका ही है। ऐसा देखते ही श्रीसुदामा जी की मति तो भ्रम में डूब गई ।

परन्तु इनकी धर्मपत्नी जी अपनी अटारी पर से इनको देखके परम अनुराग में भरी हुई आरती कलश चँवर आदिक सामग्रीयें सहित प्रभु की दी हुई सैकड़ों सहचरीयें के साथ साथ, सामने आके, आरती कर, प्रभु की कृपा से इन सब विभवों की प्राप्ति परम प्रिय वचनों से समझा के, विश्वास कराके अपने कंचन भवन में लेगई ॥

यद्यपि श्रीसुदामा जी ने सब प्रकार के विभव भोग पाए तथापि उस्में आशक्त न हुए । श्यामसुन्दर सखावर जी के उसी रूप अनूप का ध्यान और सुधामाधुरी का पान मन से करते, नवीन प्रीति रीति में पगे हुए, अपने प्राणों को रखते थे; इसी प्रकार से अपने शरीर का निरबाह करते, विषय भोगों से विरक्त रहके भक्ति प्रेमानन्दमयी रस भरी चाल से जीवनावधि पर्य्यन्त चलते रहे । (चौ०) अमित बोध अनीह, मितभोगी । सत्यसार, कवि, कोविद, योगी ॥

(दो०) गुणागार संसार दुख रहित विगत सन्देह।
तजि प्रभु चरण सरोज प्रिय तिनके देह न गेह॥

(श्लो०) युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

वैराग्य की जय! अनुराग की जय!!

प्रिय पाठक! कहां श्रीसुदामा जी का विमल चरित्र, और कहां इस दीन की असमर्थ लेखनी॥

श्रीचन्द्रहास जी।

टीका। कवित्त।

हुतो नृप एक, ताके सुत "चन्द्रहास" भयो; परी यों विपति, धाइ ल्याई और पुर है। राजा कौ दीवान, ताके रही घर आन, बाल आपने समान संग खेलै रसदुर है॥ भयो ब्रह्मभोज, कोई ऐसोई संयोग बन्यो, आए वे कुमार, जहां विप्रन को सुर है। बोलि उठे सबै "तेरी सुता कौ जु पति यहै, हुवो चाहै जानी;" सुनि गयोलाजघुर है॥५८॥

वार्त्तिक तिलक।

केरलदेशका एक मेधावी नाम राजा था, उसके पुत्र "चन्द्रहास" हुए। उनके पिताको दूसरे राजा ने युद्धमें मार डाला, तब माता भी सती होगई; इस विपत्ति से एक दासी उनको लेके, कुन्तलपुर के राजा के प्रधानमन्त्री "धृष्टबुद्धि" के घर में रहने, और निज

पुत्र करके इनको पालने लगी। जब चन्द्रहास जी पांच बर्ष के हुए, वह धाई भी मरगई। क्या बात है! जय हरि।

एकदिन इनके भाग्यबश दयासिन्धु श्रीनारदजी कृपाकर आके एकान्त में मिले, और एक श्रीशालग्राम जी की छोटीसी मूर्त्ति देके समझागए कि "इनको धोके पीलियाकरो, और दिखाके खायाकरो"; फिर उसमूर्त्ति को मुखमें ही रखने की युक्ति भी बताके श्रीभगवन्नामका उपदेश कर गए। ये वैसा ही करते और समानवयसवाले बालकों के साथ २ भगवतसम्बन्धी (रसढुर) खेल खेलाकरते थे॥

एकदिन धृष्टबुद्धिकेघर ब्राह्मणोंका भोजन था। विधिसंयोगवश लड़कोंके साथ २ उन ब्राह्मणोंके मुखियापण्डित केसामने आके उनको श्रीचन्द्रहास जी ने प्रणामकिया। उसीसमय धृष्टबुद्धिने विप्रवरसे पूछा था कि मेरी इस कन्याको पति कैसा मिलेगा?" तब वे श्रीचन्द्रहासजीकीओर अंगुल्यानिर्देशकरके कहउठे कि यही बालक तेरी इस कन्याका पति होगा। हम यह भावी निश्चय जानतेहैं॥"

सुन्तेही, वह प्रधान लज्जा ग्लानि में डूबगया॥

टीका। कवित्त।

पस्यौ सोच भारी "कहा करौं? यौं बिचारी;
"अहो! सुता जो हमारी, ताको पति ऐसो चाहिये?
डारौं याहि मार, याकौ यहै है विचार;" तब बोलि

नीचजन, कह्यौ "मारौ, हिय दाहियै" ॥ लैकेगएदूर, देखि बाल छविपूर, "हम योनि परे धूर, दुख ऐसो अवगाहियै"! बोले अकुलाय, "तोहि मारैंगे; सहाय कौन?" "मांगौं एक बात 'जब कहौं तब बाहियै'" ॥५९

वार्त्तिक तिलक।

उस्केमनमें बड़ाभारी सोच हुआ कि "अब क्या करनाचाहिये?" तब धृष्टबुद्धि ने निज भ्रष्ट बुद्धिसे ऐसा विचारकिया कि "इसबालक (चन्द्रहास) को मारडालना चाहिये। बड़े आश्चर्य्य की बात है! क्या मेरी बेटीको ऐसा दासीपुत्र दीन पति होना चाहिये?" ऐसा अविचार ठीक करके घातक नीचजनों को बुलवाके आज्ञा दी कि "इस बालक को देख मेरा हृदय जलाभुना जाता है, इस्को लेजाव शीघ्र मारडालो॥"

वे घातक लोग इनको बाहरबनमें लेगए; परन्तु मारने के काल में इनकी अतिशय सुन्दरता देख श्रीप्रभुप्रेरित दया उनके हृदयमें आगई; वे अपने मनमें कहनेलगे कि "धिक! धिक हमारी जातिकर्मको है, इस पर क्षारपड़े, कि ऐसे दुःख झेलने पड़ते हैं"; फिर, अकुलाके, श्रीचन्द्रहासजीसे वे बोले कि "अब हम तुम्हारा बधकरेंगे, बताओ तुम्हारा सहायक रक्षक कोई है?"

इनने उत्तरदिया कि "मैं केवल एकही बात चाहता हूं कि 'जब मैं कहूं तब मुझपर खड्ग का हाथ छोड़ना'" ॥

टीका कवित्त।

मानिलीन्हो बोल वे, कपोलमध्य गोल एक "गंडक्रीकोसुत", काढ़ि सेवानीकीकीनी है। भयो तदाकार, यों निहार सुख भार भरि, नैननि की कोर ही सों आज्ञा बध दीनी है॥ गिरे मुरझाइ, दया आइ, कछु भाय भरे, ढरे प्रभु ओर, मति आनँद सो भीनी है। हुती छठी आंगुरी, सो काटि लई, दूषन हो, भूषनही भयो, जाइकही सांचु चीनी * है॥९०॥ (* चीन्ही है)

वार्त्तिक तिलक।

दुष्टोंने इनकी वार्त्ता मानली। तदनन्तर श्रीचन्द्रहासजी अपने गालमें से श्रीनारदजीकीदी हुई श्रीशालग्रामजीकी मूर्त्तिको निकालके तड़ागके जल एवं वनके पुष्पोसे उनकी सप्रेम पूजन भलेप्रकारसे कर, अपने करकमल पर विराजमान करके, एकाग्रचित्त हो देखने लगे; तब प्रभुने उसी मूर्त्तिमें ऐसा सच्चिदानन्द सूक्ष्म रूप का दर्शन दिया, कि जिसके भारी प्रेमानन्द में ये मग्न होके देहाभिमानभूलके तन्मय होगए। जय, जय॥

उसी क्षण अपनी आंखोंकी कोरसे अपने बधकी आज्ञा देदी। जोंही बधिकों ने मारडालने का विचार किया त्योंही प्रभुप्रेरित ऐसी दया बधिकोंके हृदयमें आई कि मूर्छित होके वे सब भूमिपर गिरपड़े। फिर सावधान होके उठे तो उनके मन में भगवतकी भक्ति का भाव भी कुछ आगया। अपने पापोंसे ग्लानि कर,

प्रभुके सन्मुख हो; प्रेमानन्दको प्राप्तहुए । प्रभुकी जय॥

श्रीचन्द्रहासजीके एक पगमें छः उंगलियां थीं, कि जिस्का होना सामुद्रिकमें दूषण बतायाहै । उसी छठी उंगलीको काट, उन्होंने इनको छोड़दिया; मानों वह अधिक अंगुली रूप दूषण (अपलक्षण) निकलगया और अब आप भवभूषणरूप सुलक्षण रहगए ॥

जाके, दुष्ट धृष्टबुद्धिको वही अंगुली सहदानी (चिन्हासी) दिखा, कहदिया कि "हमने उस्को मारडाला"। उसने अंगुली पहिचानी, और वह बात सच मानी ।

"कौन की त्रास करै ? तुलसी, जोपै राखि हैं राम, तो मारिहै को रे ? ॥"

(चौ०) गरलसुधा, रिपुकरै मिताई। गोपद सिन्धु, अनलशितलाई ॥ गरुअसुमेरु रेणुसम ताही। रामकृपाकरि चितवहिं जाही ॥

टीका । कवित्त ।

वहै देश भूमि मैं रहत लघु भूप और, और सुख सब, एक सुत चाह भारी है। निकस्यौ विपिन, आनि, देखि याहि, मोद मानि, कीन्ही खग छांह, घिरी मृगी पांति सारी है ॥ दौरिकै, निशंक लियो, पाइनिधि रंक जियो, कियो मनभायो, सो बधायो, श्री हु वारीहै। कोऊ दिन बीतें, नृप भए चित चीते, दियो राज को तिल, भाव भक्ति विसतारी है ॥६१॥

वार्त्तिक तिलक ।

उसी कुन्तलपुरके राजाके राज्यही में एक छोटासा राजा रहता था; वह स्त्री धनादि सब प्रकारके सुखों से तो सुखी था, परन्तु उसके पुत्र न था, सो उसके पुत्र की अतिशय अभिलाषा थी। भावीबश वह राजा उसी बनके मार्गसे जानिकला; देखता क्या है कि श्रीचन्द्रहासजी बैठेहुएहैं, और श्रीसर्वान्तर्यामी प्रभुका प्रिय जानके, इनके सुन्दर रूपको देखतीहुई, हरनीयों के समूह इनको घेरे हैं, और एक बड़ा पक्षी सीसपर छाया कियेहुएहै कि जिस्की छाया माथेपर होना महा-राज्य प्राप्ति का सूचक है "उसे कृपाकरते नहींलगतीवार"।

यह देख, अत्यन्त आनन्दयुक्त हो, इसप्रकारसे दौड़के राजाने अपने गोदमें लेलिया, कि जैसे दरिद्री महा धनको पाके प्राणसमान ग्रहणकरताहै; घरमें लाके, जैसा निजपुत्र होनेसे मनमाना मंगल लोग करतेहैं वैसाही आनन्दबधावा नांचगान करकराके बहुत सा द्रव्य लुटाया, और लालनपालन करनेलगा।

कुछदिन बीतनेपर श्रीचन्द्रहासजीकी योग्यता देख अपने चित्तमें विचारकरके उस राजाने इनको राज्यतिलक करदिया।

(दो०) मसकहि करहि विरंचि प्रभु, अजहि मसक ते हीन। अस विचारि तजि संशय, रामहिं भजहिं प्रवीन ॥

राजाहोके श्रीचन्द्रहासजी ने अपने राज्यमें भगवद्-भक्ति और प्रेम भाव का बड़ाही प्रचार किया॥

टीका। कवित्त।

रहै जाके देश सो नरेश कछु पावै नाहीं, बांह बल जोरि दियो सचिव पठाइकै। आयो घर जानि, कियो अति सनमान, सो पिछान लियो वहै बाल मारो छल छाइ कै॥ दई लिखि चिट्ठी, जाओ मेरे सुत हाथ दीजे, कीजे वही बात जाको आयोलै लिखाइकै। गऐ पुर पास बाग, सेवा मति पाग करि, भरी दृग नींद नेकु सोयो सुख पाइकै॥६२॥

वार्त्तिक तिलक।

चन्दनावती का राजा कलिन्द जिस महा राज (कुन्तल पुर वाले) के राज्य में था, उस महाराज को अब श्री चन्द्रहास जी के यहां से कर नहीं पहुंचने लगा, क्योकि साधु सेवाही में इनका पैसा लग जाताथा, कौड़ी बचती न थी। इसीसे उसने कुछ सेना समेत अपने मन्त्री धृष्टबुद्धिको कर लेने के लिये चन्द-नावती में भेजा। राजा कलिन्द तथा श्रीचन्द्रहास जी ने (अपने घर में आया हुआ जानकरके) उसका बड़ा आदर सतकार किया॥

धृष्टबुद्धि ने पहिचान लिया कि यह तो वही लड़का है जिसके बधका प्रबन्ध किया था; वह क्रोध से जलभुनकर सोचने लगा कि अब "छल से

इसका बध करो" । कुछ बातें बनाकर चन्द्रहास जी को एक पत्र दे धृष्टबुद्धि ने अपने घर भेजा कि यह पाती मेरे पुत्र मदन के हाथ में दीजिये और कहिये कि जो कुछ इसमें लिखा है सो कृपा करके करवा दीजिये।

पत्रले, उस ग्राम में पहुच, एक सुन्दर बाटिका में, जो उसी मन्त्री धृष्ट बुद्धि का था, ठहरके इनने श्री शालग्राम जी की सेवा बड़े प्रेम से की; और प्रसाद पाके श्रीराम भरोसे निर्द्वन्द्व बिस्राम किया। हरि इच्छा से उनको नींद आगई, सुखसे सो गए ॥

टीका कवित्त।

खेलति सहेलिनिमों, आइ वाहि बाग मांझ करि अनुराग, भईन्यारी, देखि रीझीहै। पाग मधि पाती छबिमाती झुकि खैंचिलई, बांची खोलि, लिख्यो बिष दैन, पिता खीझीहै ॥ "विषया" सुनाम अभिराम, दृगअंजनसों बिषयाबनाइ, मनभाइ, रसभीजीहै। आइ मिली आलिन में, लालन को ध्यान हिये, पिये मद मानों, गृह आइ तब धीजीहै ॥ ६३ ॥

वार्त्तिक तिलक।

हरिइच्छासे उसीमन्त्री की लड़की "विषया" नामा अपने उस बाटिका में अपनी सखियों सहित आई; अचानक उसकी दृष्टि चन्द्रहासजी पर पड़ी, और साथ ही अति अनुरक्त और आशक्त हो गई। दूसरी ओर जा, वहां से अपनी सहचारियों से अलग हो, वह

चक्कर लगाके फिर वहीं पहुंची जहां श्रीचन्द्रहास जी सोए थे; "जिनसे अटकत हैं ये नैना। खटकत है उर सो दिन रैना॥" इनको देखही रहीथी कि इतने में एक पत्रिका दिखाईदी जिस्को उस सुन्दरीने निकालके पढ़ा; उस पत्रको अपने भाई मदन के नाम अपने पिता धृष्टबुद्धि का लिखा, पाया; और उस्का आशय यह था कि "इस पत्रिकालेजानेवालेको शीघ्रही बिषदेदेना, विलम्ब करने से मैं तुमपर क्रोध करूंगा।"

यह पढ़ उस बालिका को अपने पितापर क्रोध, तथा प्रीतिबश इस प्रिय मूर्त्तिपर दयाआई; श्रीहरिकृपासे उसीक्षण उस्को ऐसी सूझी, कि उसने बड़ीही फुरती के साथ अपनी आंख के काजल से विष शब्द के अनन्तर 'या' अक्षर बना दिया, जिस्से "विष" अब "विषया" होगया। श्री भगवतकृपाको मनन करती हुई, प्रेम रस में पगी, वहां से चटपट चली और अपनी सहचरियों में आमिली॥

जैसे मद से मांती हो इस भांति वह प्रेमाशक्त हो अपने मनोरथ की सफलता के लिये घर आई। और संतुष्ट हो प्यारे के ध्यान में मग्न, परमात्मा से प्रार्थना करने लगी॥ "जगदम्बे! मोर मनोरथ जानसि नीके"

टीका। कवित्त।

उठ्यो चन्द्रहास; जिहि पास लिख्यो लायो, जायो

देखि मन भायो, गाढ़े गरे सों लगायो है । दई कर पाती, बात लिखी मों सुहाती; बोलि विप्र, घरी एक मांझ ब्याह उभरायो है ॥ करी ऐसी रीति, डारे बड़े नृप जोति, श्री देत गई बीति, चाव पार पै न पायो है । आयो पिता नीच; सुनि घूमि आई मीच मानों; बानो लखि दूलह को, शूल सरसायो है ॥ ६४ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

श्रीचन्द्रहास जी उठे और ठिकानेपर पहुँचके चिट्ठी दी; मदनसेन बहुत ही प्रसन्न हुआ उसने इनको अपने गलेसे लगालिया और अपना हर्ष प्रगट किया; बड़ी त्वरासे, ब्राह्मणोंको बुला, लग्न सोधके भगवत कृपा से एकही घड़ीके भीतर अपनी बहिन विषयाका विवाह चन्द्रहास से करदिया । सारी रात आनन्द और दान पुण्य में व्यतीत हुई; ऐसा उत्सव किया, कि अपने से बड़े २ राजासेभी बढ़के, और तबभी महोत्सवसे अघाता न था । प्रियपाठक ! देखिये—

विष देते विषया भयो; राम "गरीब निवाज"

उसका बाप, नीच धृष्टबुद्धि, आने पर यहां यह रंग, और चन्द्रहास जी को दूलह वेष में, देख, अतिशय शूल पा, अत्यन्त मूर्छित हो गया ॥

"पर दुख लागि असन्त अभागी !"

टीका । कवित्त ।

बैठ्यो लै इकान्त, "सुत! करी कहा भ्रान्त यह?"

कह्यो सो नितान्त, कर पाती लै दिखाई है । बांचि आंच लागी; मैं तो बड़ोई अभागी ! ऐ पै मारो मति पागी बेटी रांड़ हू सुहाई है ॥ बोलि नीच जाती, बात कही " तुम जावो मठ, आवै तहां कोऊ, मारि डारौ मोहि भाई है" । चन्द्रहास जू सों भाष्यो " देवी पूजि आवो आप मेरी कुलपूज, सदा रीतिचलिआईहै" ॥६५॥

वार्त्तिक तिलक ।

परहितघृतमाखी दुर्मतिक्रोधी धृष्टबुद्धिने अपने पुत्र से एकान्त में पूछा कि " रे ! तूने यह क्या गड़बड़ किया ?" मदनसेन ने पाती दिखादी। पढ़के कुबुद्धिके तनमें आगसी लगगई; यहांतक कि बेटी का बिधवा रहना तक, वह अभागा अच्छा समझा ।

बध करनेवालों को बुलाया और चुपचाप आज्ञा दी कि " कल भोरे जिस्को देवीमन्दिर में पाना, बिना-विचारकियेही उस्काबध करदेना; और इधर निरपराधी चन्द्रहास जी से कहा कि " देवी मेरी कुलपूज्य है, तुम प्रात ही उठके जाके उस्की पूजा कर आओ, विवाह के अनन्तर उस्की पूजा हमारे कुल की रीति चली आती है " ॥

सठने अपनासा उपाय, गढ़ारचा तो परन्तु उसने यह नजाना कि (दो०) "जो भावी सो होइहैं, झूठीमन की दौर। मेरे मन कछु और है, करता के कछु और ॥ १ ॥

पर अनहित कौ सोचिबो परम अमंगल मूल । कांट जो बोवे और को, ताहीं को तिरसूल ॥ २ ॥

टीका । कवित्त ।

चलो ईकरन पूजा; देशपति राजा कही "मेरे सुत नाहीं, राज वाहीको लै दीजिये"। सचिव सुवन सों जु कह्यो "तुम लावो जावो, पावो नहीं फेरि समय, अब काम कीजिये" ॥ दौरयो सुख पाइ चाइ, मग ही में लियो जाइ, दियो सो पठाइ, नृप रंग माहिं भीजिये। देवी अपमान ते न डरो, सनमान करौं; जात मारि डार्यो, यासों भाष्यो भूप "लीजिये"॥६६॥

वार्त्तिक तिलक ।

प्रभातहोते स्नान और श्रीशालग्रामजीकी पूजासे अवकाशपा श्रीचन्द्रहासजी, श्रीदेवीजी महारानी को पूजने चले। उसीसमय श्रीसीतारामकृपासे देशाधिपति (कुन्तलपुरके महाराज) के मनमें आया कि मेरे पुत्र हैही नहीं, तो अब यही उत्तम है कि सुयोग्य चन्द्रहास को ही मैं राज्य तिलक करदूं; हरिभजूं"

ऐसा विचार कर मन्त्री के पुत्र मदन को बुलाकर हरिकृपासे यों कहा कि "मेरे मन में यह बात आई है, सो तुम अभी अभी दौड़े जाव; अपने बहनोई चन्द्रहास को लाओ; इसी समय काम कर लो; नहीं तो बिलम्ब करने से फिर न होगा; हरि इच्छा ऐसी ही है; पीछे पछताओगे" ॥ ("मन! पछतैहै अवसर बीते")

मदनसेन प्रहर्षमेंभरा बड़े चावसे दौड़ा, पंथही में दोनों (साला बहनोई) मिले। चन्द्रहासको महाराज केपास भेजा कि ऐसी ऐसी वार्ता है, इस घड़ी महाराज बैराग और अनुराग में पगे हैं, इस संकल्प में दृढ़ हैं, सीधे उनके पास पहुँचो, राज्यको प्राप्त हो; श्रीदेवी महारानी जी के अपमान का भय मत करो; मानसी प्रार्थना कर लो; मैं मठ में जा उनका पूरा सनमान पूजन करता हूं"।

उधर जाते ही मदनसेन को घातकों ने मारडाला; और इधर चन्द्रहास से महाराज ने कहा कि "यह लीजिये"; और राज्याभिषेक करही दिया। आप भगवद्भजन में लगा ॥*

* (मनुस्मृति) प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेतिसाम्यताम् ।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येतिपञ्चवै (१२—९०)

(चौ०) "उमा! कहौं मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना"।

टीका। कवित्त।

काहू आनि कही "सुत तेरो मारो नीचनिने," सींचन शरीर दृग नीर झरी लागी है। चल्यो ततकाल, देखि गिर्यो है बिहाल, सीस पाथर सों फोरि मर्यो ऐसोही अभागी है। सुनि चन्द्रहास, चलि बेगि मठपास आये, ध्याये पग देवताके, काटे अंग, रागी है। कह्यो

" तेरो द्वेषी, याहि क्रोध करि मार्यो मैं हीं, " " उठैं दोऊ दीजै दान " जिये बड़ भागी है ॥ ६७ ॥

वार्त्तिक तिलक ।

कुबुद्धिसे आकर किसीने कहा कि " तेरे बेटेका घातकोंने बध करडाला ? " यह सुन, डाढ़ें मारमार कर, वह रोनेपीटनेलगा । दौड़ताहुआ मन्दिरमें जा वैसाही देखा । वह अभागा भी पत्थरपर सीस पटक कर कालवश होगया ! "कर्म प्रधान विश्वकरि राखा"

श्रीचन्द्रहास जी सब वृतान्त सुनकर शीघ्रही देवी-भवनमें आ स्तुतिकरनेलगे; वरंच अपना सीस बलि-देनेपर उद्यत हुए । श्रीदेवीमहारानीजी प्रगटहो, इनका हाथ पकड़, यह बोलीं कि " धृष्टबुद्धि तेरा द्वेषी, है इसलिये वत्स! मैंहीने उसको पुत्रसमेत मारडालाहै । "

श्रीचन्द्रहास जी ने, उनको प्राणदान सुमतिदान के लिये देवीजीसे विनयकिया और पुनः स्तुतिकी ॥

"जय महेश भामिनी! अनेकरूपनामिनी, समस्तलोक स्वामिनी, हिमशैल बालिका । सिय पिय पद पद्म, प्रेम तुलसी चह अचल नेम, देहु ह्वैप्रसन्न, पाहि प्रणत पालिका ॥ "

श्रीदेवीमहारानी जी ने साधुता देख, हरिभक्तजान इनकी प्रार्थना स्वीकार की और प्रसन्न हो, दोनों को जिला के उन्हें सुमति भी दी कृपा की जय २ ॥

" सन्त सहहिं दुख परहित लागी ॥ " *

* वाञ्छित कल्पतरुभ्यश्च, कृपासिन्धुभ्यएवच ।
पतितानां पावनेभ्यश्च, वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥